द्धयोग

योग सिद्धान्तों
एवं
शिक्षाओं का
प्रतिपादक मासिक

...र अनन्तश्री
... महाराज

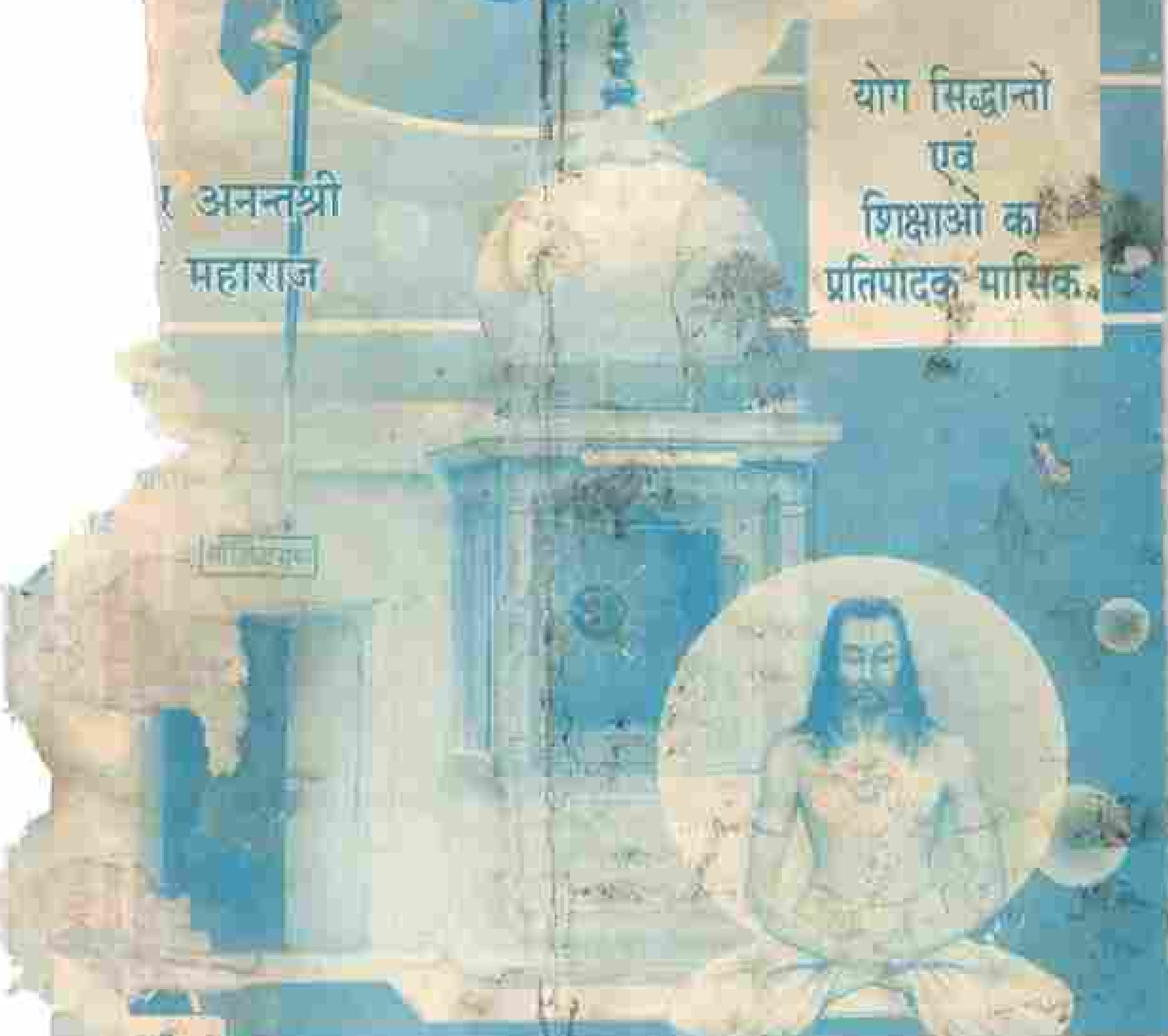

...03
... 5

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सैंयाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

संपादक:
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त संपादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध संपादक:
समस्त योग प्रचार
मण्डलों के अध्यक्ष
एवं
गुरु भाई-बहिन

एक प्रति	रु.	09.00
वार्षिक शुल्क	रु.	90.00
द्विवार्षिक	रु.	170.00
आजीवन	रु.	800.00

इस अंक में ..

- अमृत कण.............
- साधना की सफलता के सोपान (विशेष लेख).............
- सम्पादकीय.............
- महाराजा भर्तृहरि : भोग और योग डा० विजय सिंह.............
- अमर पंथ की गैल बतावे डा० [illegible] चतुर्वेदी.............
- [illegible] श्रीमती सरिता भारद्वाज.............
- संस्कार शक्ति व साधना शक्ति (भाग डा० रुक्मिणी वर्मा.............
- ग्रीष्मकालीन योग शिविर (आश्रम समा डा० सुरेन्द्र कुमार शर्मा............. 31
- दुष्टात्मा सद्गुरु प्राप्ति का कारण बनी-२ राजेश कुमार श्रीवास्तव............. 33

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 36
अंक 5

अगस्त
2003

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यों मृत्योर्मुख विवरत्तो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विषदान् योगसंस्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं
मन्दस्मितं मधुरभाषि विशालभालम्।
कर्णावलम्बिचलकुण्डलशोभिगण्डं
कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम्।।

<u>भावार्थ</u>

जो मधुर मुस्कानयुक्त, मधुरभाषी और विशाल भाल से सुशोभित है, जिसके दोनों कपोल कानों में लटके हुए चंचल कुण्डलों से शोभित हो रहे हैं तथा जो कर्णपर्यन्त फैले बड़े–बड़े नेत्रों से शोभायमान और नेत्रों को आनन्द देने वाला है, ऐसे श्री रघुनाथजी के मुखारविन्द का मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।

अमृतकण

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

सत्ययुग में विष्णु के ध्यान से, त्रेता युग में यज्ञों से, द्वापर में विधिपूर्वक पूजा करने से जो फल मिलता था, वही फल कलियुग में भगवान के नाम-कीर्तन से मिलता है।

※ ※ ※

अहोरात्रं हरेर्नाम कीर्तयन्ति च ये नराः।
कुर्वन्ति हरिपूजां वा न कलिर्बाधते च तान्॥

जो मनुष्य दिन-रात भगवान के नाम का अखण्ड कीर्तन या सानन्द हरि पूजा करते हैं उन्हें कलिकाल बाधा नहीं पहुँचाता।

※ ※ ※

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(गीता ११/५४)

अर्जुन! मेरे इस प्रकार के स्वरूप को अनन्य भक्ति से मुमुक्षु पुरुष यथार्थतः जान सकते हैं, देख सकते हैं तथा मेरे स्वरूप में अवस्थित भी रह सकते हैं।

※ ※ ※

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता
घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः।
संकीर्त्य नारायण शब्द मात्रं
विमुक्तदुःखा सुखिनो भवन्ति॥

आर्त, उदास, शिथिल तथा भयभीत एवं भयंकर विपत्ति में पड़े हुए प्राणी भी केवल 'नारायण' शब्द का संकीर्तन करके सभी दुःखों से छूटकर सुखी हो जाते हैं।

※ ※ ※

❑ विशेष लेख

साधना की सफलता के सोपान

(योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

आज से कई दिन पूर्व साधना क्रम को समझाते हुये मैंने तुम्हें बतलाया था कि मनुष्य को क्रियाशील रहना चाहिए। हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त है—'**कुर्वन्नवेह कर्माणि शतः समाः**'। अर्थात मनुष्य को अपनी सौ वर्ष की आयु कर्म करते हुए व्यतीत करनी चाहिए। जो मनुष्य कर्मरत रहते हैं उनके रास्ते में कोई बाधायें नहीं आया करतीं। अपने रास्ते को वे ठीक प्रकार से निभा जाया करते हैं और साधना में सफलता पा जाया करते हैं। किन्तु जो मनुष्य कर्मरत नहीं हैं उनके रास्ते में विघ्न–बाधायें आती रहती हैं और वे अपने मार्ग में आगे बढ़ नहीं पाते। हमने यह देखा कि जिस समय हमने पहले–पहले सवाँई गाँव में जाकर निवास किया था या अन्यत्र जहाँ–जहाँ योग प्रचार कार्यक्रम बनाये वहाँ पर तीव्रतम साधनायें लोगों को कराईं। नियम से उनका खानपान चलता था–नियम से वे साधना में बैठते थे उनका खानपान भी नियम से ही चलता था जैसा कि भगवान नें अपने मुखारविन्द से गीता में कहा—

> **'नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।**
> **न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।**
> **युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।**
> **युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुखहा।।'**

अर्थात् जो लोग बहुत अधिक खा लेते हैं उनको योग सिद्ध नहीं होता, जो लोग भूखे मरते रहते हैं उनको भी योग सिद्ध नहीं होता। जो रात में बैठकर गप्पें लगाया करते हैं, ताश या जुआ खेलते रहते हैं। उनको भी योग सिद्ध नहीं होता। योग किनको सिद्ध होता है ? जो ठीक समय पर सो जाते हैं, ठीक समय पर उठ जाते हैं, ठीक समय पर उचित मात्रा में भोजन करते हैं, ठीक समय पर अपने अभ्यास में बैठते हैं, जिनका काम नियमानुवर्तिता से चलता है वे अपनी स्थिति को उत्तम रूप से पा जाया करते हैं। इसलिए नियमों की श्रृंखला हर व्यक्ति को बना लेनी चाहिये। जो नियमों की श्रृंखला में बद्ध होकर चलता है वे योग मार्ग में ऊँचे उठ जाया करते हैं। हमने अपने अच्छे–अच्छे साधकों को नियमावली के अनुसार तप कराया उसके परिणामस्वरूप वे ऊँची स्थितियों को प्राप्त हुये। मैंने तुम्हारे सामने एक दिन जिक्र किया था कि हमारा एक बच्चा रघुनन्दन प्रसाद जिसका नाम बाद में टाट बाबा प्रख्यात हुआ हमारे पास आया। वह पहले इंजीनियर था जब वह मेरे पास आया उस समय वह हैट, पैंट, नेकटाई पहने बिल्कुल बाबू वेश में था। उसके आने का एक कारण बना था। बनारस में भगवान विश्वनाथ के मन्दिर में प्रणाम करके दशाश्वमेध घाट पर उसने कई दिन अनशन व्रत करते हुये भगवान

शिव का चिन्तन किया। उस समय उसको आकाशवाणी हुई, 'तुम सवाँई सिद्ध गुफा जाओ।' किन्तु उसे सिद्ध गुफा के बारे में कोई ज्ञान नहीं था। उसने निश्चय किया कि बनारस से जो गाडी पहले जायेगी उसमें बैठ जायेगा। उसने ऐसा ही किया। पहले चलने वाली गाड़ी दिल्ली आ रही थी वह उसमें बैठ गया। दिल्ली तक वह लोगों से सवाँई गाँव के बारे में पूछता रहा किन्तु किसी ने सवाँई गाँव के बारे में कुछ नही बताया। उसने अपने मन में निश्चय किया कि मुझे सवाँई गाँव का पता नही चला जिसकी मुझे आकाशवाणी हुई थी। अब मैं हरिद्वार जाकर गंगा जी में अपने इस शरीर को छोड़ दूँगा। जब यह इरादा करके हरिद्वार जाने के लिए गाड़ी की तलाश में था उस समय प्लेटफार्म पर बैठे हुए कुछ व्यक्ति आपस में बातें कर रहे थे कि भाई ! सवाँई गाँव में एक ऐसे महात्मा है जो सबकी नाक में रस्सी डालते हैं और दूध पिलाते है। इस तरह से वे हर बीमार आदमी का इलाज करते है और सभी राजी हो जाते है। यह सुनकर रघुनन्दन प्रसाद ने उन लोगों से पूछा—भई ! यह सवाँई गाँव कहाँ है ? उन लोगों ने कहा— भाई साहब ! सवाँई गाँव तो जिला आगरा में है; और उसके पास में मितावली स्टेशन लगता है। वह पूछने लगा—तुम लोग कहाँ जाओगे ? उन्होंने कहा—हम टूण्डला जायेंगे। तुम चलते हो तो चलो हम तुम्हें मितावली उतार देंगे। वहाँ से सवाँई एक मील की दूरी पर है। वह कहने लगा— बस ! मैं यही चाहता हूँ। वह उन लोगों के साथ बैठ गया। उन लोगों ने उसे मितावली उतार दिया। मितावली उतर करके पूछते हुये वह गाँव में पहुँच गया। हमारे आश्रम के पास में ही जो तालाब है उसके पास ही हमारा एक बच्चा लक्ष्मीनारायण खड़ा था। रामचन्द्र उसके बड़े भाई का नाम था। अब वे दोनों नहीं रहे। लक्ष्मीनारायण तालाब में अपने बैलों को पानी पिला रहा था। रघुनन्दन प्रसाद ने लक्ष्मीनारायण से पूछा—यहाँ कोई सिद्धगुफा है ? कोई बाग है ? यहाँ महात्मा जी रहते हैं ? लक्ष्मीनारायण ने कहा—हाँ यहाँ सिद्धगुफा है और यहाँ महात्मा जी भी रहते हैं, चलो ! मैं आपको वहाँ ले चलता हूँ। इस प्रकार से उसे गुफा के पास ले आया और आश्रम दिखाया, गुफा दिखाई। गुफा को देखकर रघुनन्दन प्रसाद कहने लगा—हाँ, यही वह स्थान है जो मैंने स्वप्न में देखा था। भगवान शंकर ने मुझे यही स्थान दिखाया था। गुरुजी तो यहाँ हैं नहीं। लक्ष्मीनारायण ने कहा—गुरुजी तो एकान्तवास के लिये चण्डी के पहाड़ (हरिद्वार) पर गये हैं। पता नहीं, महीने में आयें, दो महीने में आयें कुछ कहा नहीं जा सकता। वह कहने लगा—अच्छा भाई ! कभी भी आयें मुझे उनके दर्शन करने हैं। मैं दो महीने के लिए वृन्दावन चला जाऊँ इतने में गुरुजी आ जायेंगे, मैं भी तब तक लौटकर आ जाऊँगा। इतनी बातें वे आपस में कर ही रहे थे कि अकस्मात् मैं वहाँ पहुँच गया। चण्डी के पहाड़ पर मैंने तीव्रतम साधना की व एकान्तवास किया। पिछली बार जब हम चण्डी के पहाड़ पर गये थे तब हमने अपना वह पत्थर ढूँढा जिस पर मैं रात को सोया करता था। किन्तु वह पत्थर अब हमें नहीं मिला। लोगों ने उसे तोड़ दिया। वहाँ नीचे की तरफ लोगों ने मकान बना लिये हैं। खैर ! चण्डी के पहाड़ से एकान्तवास करके जब मैं लौटा तो लक्ष्मीनारायण और रघुनन्दन प्रसाद दोनों गुफा में बैठे हुये थे। गुफा पर किवाड़ हमने लगवा लिए थे। वे दोनों किवाड़ बन्द

करके अन्दर बैठे थे। उस समय और कोई कमरा नहीं बना था। मैंने अकस्मात किवाड़ खोले तो वह ब्राह्मण बालक लक्ष्मीनारायण मुझसे पूछने लगा। (केवल यह देखने के लिये कि रघुनन्दन प्रसाद इन्हें पहचानेगा कि नहीं) भाई साहब ! आप भी गुरुजी के दर्शन को आये हैं। रघुनन्दन कहने लगा यह भाई साहब नहीं, यही गुरुजी ही हैं। खैर ! रघुनन्दन प्रसाद ने प्रणाम किया फिर मैंने भी कहा—

हाँ भई ! मैं आया हूँ। मेरे मन में आने का विचार बना और मैं आ गया।

एक–दो दिन के बाद रघुनन्दन प्रसाद आगरे से दीक्षा का सामान लाया और मैंने उसे योग दीक्षा दी। दीक्षा देने के बाद हमने उसके लिये नियमावली बनाई पहले हम गुफा पर रख करके ही उसको नियमों पर चलाते रहे। मैं खाट पर सोया करता था वह खाट के बराबर में जमीन पर सोया करता था। पहले–पहले जब मैं गुफा पर आया तब मेरे पास भी खाट नहीं थी। मैं भी जमीन पर ही सोया करता था। फिर प. चिरंजीलाल ने अपने लड़के की शादी के मौके पर हमें खाट बनवाकर दे दी थी। हमने रघुनन्दन प्रसाद की नियमावली बनाई। प्रातःकाल जल्दी उठ करके स्नानादि से निवृत्त होने पर हम उसे दो–तीन घण्टे ध्यान में बिठा देते थे। पहले मन्त्र जाप करता था फिर ध्यान में बैठता था। ध्यान के बाद फिर दो घण्टे मंत्र जाप किया करता था। नियम यह बनाया था कि वह दो–दो घण्टे मंत्र का जाप करके फिर ध्यान में बैठता रहे। शाम के पाँच बजे तक यह क्रम चलता था। फिर उसको अपने साथ भोजन कराता था। भोजन मैं स्वयं बनाता था। जमीन पर सोते हुये उसने एक दिन अपने पास में ही एक साँप को बैठा देख लिया। इससे वह बहुत डर गया। हमने उसको गुफा की छत पर सोने की आज्ञा दे दी। एक दिन उसने नीम के पेड़ पर भी एक साँप देख लिया। वह कहने लगा—गुरुजी ! यह तो यहाँ पर भी आ गया। हमने फिर उसको रात में सोने के लिए गाँव में भेज दिया। एक हमारे बच्चे थे काशीराम पुजारी, उसके मन्दिर में हमने उसे छोड़ दिया। उसके मन्दिर के बगल में एक कमरा था उसमें बैठकर रघुनन्दन प्रसाद अपना अभ्यास करता रहा। तीन महीने तक एक समय भोजन करके वह अपना अभ्यास करता रहा। उसके बाद तीन महीने केवल बेलपत्र खाकर अभ्यास करता रहा। उसके बाद तीन महीने केवल लस्सी पीकर अभ्यास किया। परिणाम निकला कि सिद्धिशक्तिमान हो गया। उसके अन्दर दूरदर्शन, दूरश्रवण की योग्यता आ गई वह हजारों कोस दूर–दूर की वस्तुएँ देखने वाला हो गया। हजारों कोस दूर की आवाज सुनने की योग्यता उसमें आ गई उसने जिसको जो वरदान दिया वह सफल हो गया। और भी कई प्रकार की ताकतें उसके अन्दर आ गई। यही उसकी तपस्या एवं साधना की नियमानुवर्तिता के फलस्वरूप हुआ। मैंने तुम्हें यह बताया था कि जो ठीक समय पर खाता है ठीक समय पर सोता है, ठीक समय पर जागता है, ठीक समय पर अपने अभ्यास में बैठता है उसके लिए योग दुख विनाशक हो जाता है। रघुनन्दन प्रसाद की नियमावली भी हमने इसी प्रकार की बनाई थी। जिसके फलस्वरूप उसके अन्दर सिद्धिशक्तियाँ आ गई। यह एक स्वाभाविक चीज है। तुम इसको समझो या न समझो। योगदर्शन इस बात को बतलाता है—**कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धि क्षयात्तपसः** अर्थात्

तप के द्वारा योगी को कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि मिल जाती है। क्योंकि उसकी अशुद्धि का नाश हो जाता है। तप के द्वारा योगी दूर–दूर की देखने वाला, व दूर–दूर की सुनने वाला बन जाता है। यह बात रघुनन्दन प्रसाद के जीवन में आई। वह भी दूर–दूर की सुनने व देखने लगा। एक और बात उसके अन्दर आई वह श्री ऋतम्भरा प्रज्ञा की। ऋतम्भरा प्रज्ञा का अर्थ है **'ऋतं सत्यं बिभर्ति या सा ऋतम्भरा'** जिस बुद्धि के अन्दर सत्य ज्ञान होता है। वह ऋतम्भरा प्रज्ञा कहलाती है। एक बार रघुनन्दन प्रसाद गुफा के पास बैठा था। सफीदों के हमारे बच्चे वैद्य रामस्वरूप शास्त्री मुझ से योग दीक्षा लेने वाले थे। रघुनन्दन प्रसाद ने कहा–शास्त्री जी ! जल्दी दीक्षा ले लो। वह कहने लगा–क्यों महाराज ! जल्दी क्यों लें ? उसने कहा– दीक्षा ले लो। जल्दी का कारण फिर बताऊँगा। दीक्षा लेने के बाद लोगों ने रघुनन्दन प्रसाद से जल्दी का कारण पूछा। उस समय गाँव के भी बीसियों व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे। रघुनन्दन प्रसाद ने सभी के सामने कहा–इस समय इनकी पत्नी को प्रसव हो रहा है, बच्चा पेट से बाहर आ गया है और वह लड़का है। कल तुम्हें तार मिल जायेगा। अब तुम सूतक में हो दीक्षा लेने के अधिकारी नहीं हो। लोग उसके पीछे पड़ गये कि बताओ आपको कैसे पता चला कि प्रसव होने वाला है। उन्होंने कहा–पहले तो मेरे मन के अन्दर आया कि प्रसव होने वाला है। फिर मैंने आँख उठाकर देखा तो मैंने इनकी स्त्री को प्रसव पीड़ा से कराहते हुए देख लिया फिर मैंने देखा कि बच्चा हो गया है। उस लड़के का नाम आनन्दस्वरूप है। उसके मन में आया कि बच्चा होने वाला है इसको कहते हैं ऋतम्भरा प्रज्ञा। सम्प्रज्ञात समाधि की चौथी श्रेणी अस्मितानुगत समाधि में ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय हुआ करता है। इस स्थिति में रघुनन्दन प्रसाद ने जिसको जैसा कह दिया हो गया किन्तु जब ज्यादा ही प्रपंच में पड़ गया तो एक दिन मैंने कहा–देखो ! तुम यह सब मत किया करो। सिद्धिशक्तिमान को अपनी सिद्धियाँ दिखलानी नहीं चाहिए। उसने कहा– आप मेरा मान नहीं देख सकते इसलिए आप नाराज होते हैं। मैंने कहा मेरे बच्चे का मान तो मेरा ही मान है। किन्तु ये साधना में विघ्न है। खैर ! उसके मन में ये भावनायें आने लगीं कि वह वहाँ से चला जाये। उन्हीं दिनों गुफा पर एक साधु आया। मैं उस समय काशीराम पुजारी के यहाँ भोजन करने गया हुआ था। उस महात्मा ने रघुनन्दन प्रसाद से कहा–महाराज जी कहाँ गये हैं ? उसने कहा–महाराज जी भोजन करने गये हुए हैं। महात्मा ने पूछा–कब तक आयेंगे ? उसने कहा–बस ! भोजन करके अभी आते ही होंगे। साधु ने कहा–नहीं, उनका विचार बदल गया है। वे किसी के यहाँ सत्संग करके पाँच बजे तक आने का विचार बना रहे हैं। तुम उन्हें एक बार बुला लाओ। वह मुझे बुलाने गया। मैं काशीराम पुजारी के मन्दिर में बैठा हुआ था। रघुनन्दन प्रसाद ने आकर मुझसे कहा–एक महात्मा आपके दर्शनार्थ गुफा पर आये हुए हैं। उन्होंने ही मुझ से कहा है कि आप शाम के पाँच बजे तक आयेंगे। इसलिए उन्हें बुला लाओ। मैंने कहा–हाँ भई ! आज तो हमारा विचार सत्संग करके ही आने का था किन्तु महात्मा जी दर्शनार्थ आये हैं तो मैं गुफा पर चलता हूँ। मैं रास्ते में अपने मन में सोच रहा था कि महात्मा को सम्मान के साथ अपने साथ बिठाऊँगा। मेरे वहाँ पहुँचने

पर उसने रास्ते में ही लम्बा पड़कर दण्डवत प्रणाम किया। उसके बाद गुफा के सामने खड़े होकर रघुनन्दन प्रसाद से कहा— 'क्यों तू यहाँ विश्वनाथ जी की आज्ञा से आया है ? उसने कहा है—मैं विश्वनाथ जी की आज्ञा से ही आया हूँ।' महात्मा ने मेरी ओर इशारा करके कहा—यही विश्वनाथ जी है। इनकी आज्ञा का पालन करना। कर दण्डवत् प्रणाम ! जो तुम्हें यहाँ मिल गया है वह कहीं नहीं मिलेगा। इसके बाद गुफा की सात बार परिक्रमा करवाई महात्मा जी ने फिर कहा—इस जगह को नहीं छोड़ना। किन्तु तू क्रोधी है अहंकारी है तू चला जरूर जायेगा यहाँ से। और तुझे घोर विपत्तियाँ घेर लेंगी। उस समय गुफा पर दौलतराम आदि १०–१५ व्यक्ति मौजूद थे। उन्होंने कहा— 'महाराज ! आप कुछ भोजन कर लें। महात्मा जी ने कहा—मेरा भोजन तो यहाँ बहुत खड़ा है। आक—धतूरे के काफी पत्ते तोड़कर सभी के सामने खा गया। लोग कहने लगे—महाराज— आप थोड़ा दूध ले लें। वह कहने लगा—यही मेरा दूध है। आँवले की जड़ में वर्षा का पानी एकत्रित था वही लेकर पी लिया। उसके बाद वह महात्मा चला गया। गाँव के कई लोग उसके पीछे गये किन्तु तालाब तक दिखाई देने के बाद फिर उसका कहीं पता नहीं चला किधर निकल गये।

कुछ दिनों के बाद रघुनन्दन प्रसाद हमारे पास से चला गया। ऋषिकेश से ऊपर किसी पहाड़ की गुफा में बैठ गया। वह पहाड़ ऊपर से टूट गया और उसमें दब गया। पहाड़ के लोगों ने उसे देख लिया था। उन्होंने खोद—खोद कर दो—तीन दिन में उसे निकाला। थोड़ी—थोड़ी साँस आ रही थी। खैर ! जिन्दगी तो बच गई उसके बाद लौट करके मेरे पास आया। मैं उसे पहचान भी नहीं पाया। मैंने पूछा—तुम कौन हो कहाँ से आये हो ? वह कहने लगा— गुरुदेव मैं आपका बच्चा रघुनन्दन प्रसाद हूँ। आप मुझे पहचान नहीं रहे हैं ? मैंने कहा— रघुनन्दन प्रसाद तुम्हारी यह क्या हालत हो गई है ?" वह कहने लगा—गुरुजी ! मैं तो पहाड़ के नीचे दब गया था बड़ी मुश्किल से बचा हूँ। इसके बाद वह मुझसे दूर—दूर रहने लगा और फिर फिरोजाबाद में अपना आश्रम कायम कर लिया। अभी पिछले वर्ष १३ मई को उसने शरीर छोड़ दिया है। मेरे कहने का अभिप्राय एक है कि उसने हमारे बताये नियम के अनुसार नियमानुवर्तिता से साधनायें की और साधना के फलस्वरूप इतनी ऊँची स्थिति को प्राप्त किया। योगदर्शन हमें बतलाता है— **तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः** मनुष्य पहले तप करे। उस तप के अन्दर ब्रह्मचर्य से रहे। आहार—विहार पर संयम रखें। नैत्यिक व्यायाम करे। तप से दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि योग्यता स्वतः आती है। इसलिए साधक ब्रह्मचर्य का पालन करे। आहार—विहार को युक्त रखें और तीसरी बात ज्यादा बक—बक, झक—झक न करें। चौथी बात—अपनी नियमानुवर्तिता का पक्का रहे उसमें विघ्न—बाधा न आने दें। तप के साथ—साथ मन्त्र जाप जुड़ा हुआ है। मन्त्र जाप से इष्टदेव के दर्शन होते हैं। ऋषि, मुनि और देवता स्वाध्यायशील व्यक्ति को दर्शन देकर वरदान आदि दे दिया करते हैं। जो मनुष्य तपपूर्वक स्वाध्याय करेगा तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि रजोगुण और तमोगुण खत्म हो जायेंगे।

सतोगुण का विकास हो जायेगा और उसके बाद स्वतः ही ईश्वर प्रणिधान हो जायेगा। ईश्वर को आत्मसमर्पण की भावना तप और स्वाध्याय से ही आती है। ईश्वर महायोगी है। उनके संकल्प से, शक्तिपात से योगी को समाधि हो जाती है। इसी के उदाहरण हैं तुलसीदास, व्रजगोपिकायें तथा नरसी मेहता आदि–आदि। तो इसलिये नियमानुवर्तिता से ही ये सब कुछ होगा। हमारे पास बहुत बच्चे आते हैं। उनकी भावना रहती है कि हम कुछ करें किन्तु पड़े रहने से साधना नहीं बनती। साधना बनेगी सद्गुरुदेव के कन्ट्रोल में हाथ मे बँधकर करने से। नियमावली बनायेंगे गुरुदेव, तुम उस नियमावली का पालन करो। तीसरी बात, भोग विलास छोड़ना पड़ेगा। जो लोग ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके नियमावली का पालन करेंगे। उनके अन्दर अवश्य ही शक्ति पैदा हो जायेगी, वे अवश्य ही बन जायेंगे। ऐसी नहीं कि कोई न बनें। किन्तु बनने वाला तो कोई हो अधिकारी तो हो। यदि एक व्यक्ति आकर तरह–तरह से प्रश्न करता है–खेचरी कैसे करनी चाहिये ? बजोली कैसे करनी चाहिये ? आजकल लोगों ने बजोली को भोग विलास का साधन मान लिया है। अपनी मूत्रेन्द्रिय में सलाई आदि घुमा लेते हैं। इससे भोग विलास की सामर्थ्य बढ़ जाती है और वे भोगी बन जाते हैं। यह नहीं होता कि वे पारे और वीर्य की गोली बनाकर यहाँ (भृकुटी) में पहुँचायें और समाधि लग जाये। ऐसा कोई कर ही नहीं पाता। इतना प्राणायाम नहीं होता इतनी योग्यता नहीं होती। इसलिये अपनी नियमावली पर जो चलता है चाहे वह हठयोग की साधना करता हो या राजयोग की साधना, नियमानुवर्तिता दोनों के लिए आवश्यक है। हमें इस कलिकाल में तो हठयोग या प्राणायाम करने वाला कोई दीखता ही नहीं। हमारे पास प्राणायाम करने वाले बहुत से लोग आये हमने उनको प्राणायाम का उपदेश दिया किन्तु वे आगे बढ़ नहीं पाये। हमने अपने कई ब्रह्मचारियों को प्राणायाम कराना चाहा। खूब घी भी खिलाया किन्तु वे सफल नहीं हुए। प्राण पर नियन्त्रण कर नहीं पाये। केवल मात्र एक लड़का जम्मू का संसार सिंह निकला जिसने प्राणायाम किया और सफलता पाई। उसको भी प्राणायाम से दूर–दर्शन, दूर–श्रवण की योग्यता आ गई थी इसलिए देखो। अब हम दो–तीन दिन और यहाँ रहेंगे। फिर अपने अगले कार्यक्रमों में जायेंगे। मैं तुम्हें योग सिद्धान्त तो अपनी ओर से समझाने की कोशिश कर देता हूँ परन्तु तुम लोग कितना चल पाते हो यह बात अलग है। मैंने अपने हर गृहस्थी बच्चे को यह बतलाया हुआ है कि सुबह पौने चार बजे उठो। थोड़ा सा जल पीयो। फिर शौचादि जाकर नहाओ। शरीर को खुरदरे अंगोछे से रगड़–रगड़ कर साफ करो ताकि रोमकूप खुल जायें। फिर श्री प्रभुजी की आरती करो। इसके बाद एक घण्टे जीवन तत्त्व साधन करो। इतना करने के बाद दो घण्टे गुरुमन्त्र का जाप करो और ज्यादा नहीं तो कम से कम आधा घण्टा ध्यान का अभ्यास करो। यह प्रातःकाल की नियमावली है। दिन में अपने–अपने काम करो। सायंकाल के समय फिर समय निकालकर दो घण्टे मन्त्र जाप अवश्य करो। रात्रि भोजन करने के बाद श्वासन से मंत्रजाप करते हुए नौ या साढ़े नौ बजे तक सो जाया करो। इस प्रकार से तुम्हारा ध्यान लग जायेगा। देखो ! तुम सबने गर्भावस्था में प्रतिज्ञायें की हैं। मनुष्य गर्भावस्था में प्रतिज्ञा करता है यदि अब की बार मैं इस नरक से छूट जाऊँगा

तो मैं नारायण की शरण लूँगा, भगवान महेश्वर की शरण लूँगा। योग साधना करूँगा। किन्तु संसार में आते ही मनुष्य इन प्रतिज्ञाओं को भूल जाता है। मैंने कल तुम्हें भर्तृहरि का एक श्लोक सुनाया था। जिसका भावार्थ था कि रोज सूर्य निकलता है और शाम को अस्त हो जाता है मनुष्य की आयु का एक दिन कम हो जाता है। संसार में अपने नाना प्रकार के धंधों में व्यस्त रहने के कारण हमें समय का भी ज्ञान नहीं हो पाता। हम रोज सुनते हैं अमुक मर गया है अमुक पैदा हो गया है किन्तु हमारे मन में कोई भय उत्पन्न नहीं होता। यह ख्याल ही नहीं आता कि हम आज बोल रहे हैं किन्तु कल को ऐसा समय आ जायेगा कि जिसमें बोलना बंद हो जायेगा। हम कुछ भी कह नहीं सकेंगे। यह सारा संसार मोहरूपी शराब को पीकर उन्मत होता चला जा रहा है। मुझे एक छोटी सी घटना आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के चरित्रों के अन्दर याद आई। श्री प्रभुजी ऋषिकेश आश्रम में विराजमान थे। मैं भी वहीं पर था और भी कई गुरु भाई थे। अमृतसर की एक देवी अपने बच्चे को लेकर के आई जो बहुत ही शराबी कबाबी व व्यभिचारी था। उसने अपने घर की सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी थी। पहले उसकी हालत को देखकर के श्री प्रभुजी ने उसे रखने से मना कर दिया किन्तु उसकी माता के बहुत अनुनय-विनय करने पर रख लिया। श्री प्रभुजी दीनदयाल हैं। भक्तवत्सल हैं उन्होंने उस साईदास नामक लड़के को आश्रम में रख लिया। शक्तिपात उस पर इतना गहरा हुआ कि वह आठ-आठ घण्टे ध्यान में बैठा रहता था। हमारी उम्र छोटी थी हम खेलते-कूदते रहते थे। वह मुझे और नरसिंह मूर्ति जी को ताड़ना दिया करता था। एक दिन वह बड़े कड़े शब्दों में ताड़ रहा था- तुम्हें शर्म नहीं आती। तुम अपना जीवन व्यर्थ में गवा रहे हो तुम ध्यान में नहीं बैठते हो। उसके इन शब्दों को सुन करके श्रीप्रभुजी ने साई दास से कहा- साई दास ! तू इनको क्या कह रहा है, तू अपने को सम्हाल ! तू अपने आपको सम्हाल ले तो यह बहुत बड़ी बात है ये लोग तो तेरे जैसे हजारों को बनाने वाले होंगे भविष्य में। तू इनकी क्या चिन्ता कर रहा है तू अपनी चिन्ता कर। साईदास प्रभुजी के कहने से चुप तो हो गया किन्तु उसके मन के अन्दर यह भावना बनी रही कि देखो ! मैं इतना बड़ा ध्यानी हूँ, मैं आठ-आठ, दस-दस घण्टे ध्यान में बैठा रहता हूँ, मेरा भी ध्यान ऊँचा चलता है किन्तु प्रभुजी ने यह क्या शब्द कह दिया है-तुम अपने आप को सम्हालो। ये लोग खेलते कूदते रहते सम्हाल है ध्यान में भी विशेष नहीं बैठते किन्तु प्रभुजी इन्हें कुछ नहीं कहते। मेरी उम्र उस समय १५ या १६ साल की होगी। नरसिंह मूर्ति जी मुझसे एक-दो वर्ष छोटे थे। थोड़े दिन के बाद श्री प्रभुजी कनखल चले गये। साईदास भी प्रभुजी के साथ गया। हम लोग भी प्रभुजी की सेवा में कनखल चले गये। थोड़े दिन के बाद साईदास को अमृतसर से किसी शादी का निमन्त्रण आया। उस समय साईदास की माँ भी साथ में थी। निमन्त्रण में लिखा था-तुम पत्र देखते ही फौरन चले आओ। साईदास जाने को तैयार हो गया। श्री प्रभुजी कहने लगे-'साईदास ! तुम अभी मत जाओ इस शादी को तुम छोड़ दो किन्तु वह नहीं माना उसकी माँ कहने लगी- महाराज जी ! शादी में चला गया तो अब यह गिर जायेगा। इस पर साईदास कहने लगा-प्रभुजी ! अब मुझे संसार में कोई गिराने वाला है ही नहीं। मैं अब कैसे

गिर जाऊँगा। श्री प्रभुजी ने मेरे सामने ये शब्द कहे—साईदास ! तुम्हें इस बात का ज्ञान नहीं कि तुम्हें इतनी बडी शक्ति, इतना बड़ा ध्यान कैसे मिल गया है। ये संस्कारवश हो गया है। इसलिये तीन दिन तक हमारे पास से कहीं मत जा। तीन दिन के बाद चले जाना फिर तुम्हें कोई नही गिरा सकेगा। तीन दिन के अन्दर यदि चला गया तो तू अवश्य गिर जायेगा। फिर तेरी सम्हाल मुश्किल होगी। साईदास हंसने लगा—प्रभुजी आप कह रहे हैं ऐसा किन्तु अब मुझे गिराने वाला कोई नहीं है—वह हठात् चला गया। जब वह चला गया तो प्रभुजी ने अपने मुख से ये शब्द कहे **'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।'**

अर्थात् त्रिगुणात्मिका मेरा माया अत्यन्त दुस्तर है जो मेरे शरण में आ जाते हैं वही इस माया से पार हो पाते हैं। दूसरा नही। श्री प्रभुजी ने कहा—देखो। अब यह चला गया है अब इसका लौटकर आना मुश्किल है। यदि तीन दिन हमारे पास रह जाता तो यह खतरे से निकल जाता फिर यह नहीं गिरता। बात वही बनी। साईदास लौटकर नहीं आया। एक महीने के बाद श्रीप्रभुजी योग प्रचार कार्यक्रम के लिए अमृतसर पधारे। मैं और नरसिंह मूर्ति भी साथ थे। हम दोनो साईदास के मकान पर उसको देखने गये। वह अपने छत पर खाट पर पड़ा हुआ था। शराब की बोतलें उसके खाट के आसपास पड़ी थीं। मैने उससे कहा—भाई साईदास ! क्या हालचाल है ? पंजाबी भाषा में उसने कहा—हालचाल चंगा है होर की होदा। मैने पूछा—आपका ध्यान लगता है ? वह कहने लगा— ध्यान दी की गल्ल है जैड़ी तस्वीर सोचदी आ जादी हैं'। यह हालत थी उसकी। उसे शराब का दुर्व्यसन बुरी तरह से लग गया और उसका पतन हो गया और ध्यान का नाम भी उसके जीवन में नहीं रहा। थोड़े दिन के बाद उसका जीवन समाप्त हो गया। खैर ! कहने का अभिप्राय मेरा यह है कि प्रभुजी की कृपायें बहुत विलक्षण थीं। बड़ी दूरदर्शिता से बात कहा करते थे। एक बार मैं होली के आस–पास बरसाने में था। बरसाने में फाल्गुन सुदी नवमी या दसमी को होली मनाई जाती है। खूब रंग में खेलते हैं। नन्दगाँव की होली बाद में होती है। उस समय श्री प्रभुजी का पत्र मुझे आया— लिखा था चि. हमारे पत्र के पाते ही तुम फौरन ऋषिकेश चले आओ। तुम बरसाना नहीं रहना। मैं **'गुरोराज्ञानुलंघनीया'** के सिद्धान्त के अनुसार दूसरे दिन ऋषिकेश पहुँच गया। श्री प्रभुजी ने मुझे देखकर कहा—बेटा यह तुमने बहुत अच्छा किया।मैने कहा—प्रभुजी ! बरसाने की होली देखने तो विदेश से भी लोग आते हैं एक दिन का फर्क था आपने मुझे वहाँ रहने नहीं दिया। वे कहने लगे—बेटा ! जिन्दगी पड़ी है होली देखने के लिये। इस समय तुम्हारा आना ही जरूरी था। खैर ! इसके बाद फिर प्रकरण चला—प्रभुजी ने कहा—हाँ, अगले साल तू होली देख लेना कोई बात नहीं। श्रीप्रभुजी के ये शब्द थे—यदि इस साल तू बरसाने रह जाता तो हमारे काम का नही रहता'। बात मैं समझ गया। वहाँ पर क्या प्रभाव पड़ सकता था ? मैने आज्ञा का पालन कर लिया फलस्वरूप उनकी कृपा बनी रही। जब तक मनुष्य अन्तर्जगत में प्रवेश नहीं करता तब तक बाह्यवृत्तियाँ विचलित करती रहती हैं। इसलिये तुम लोग अपने आप को ध्यान की ओर लगाओ यही मनुष्य के कल्याण का मूल साधन है। सभी को बार–बार आशीर्वाद।

स्वास्थ्य एवं योग साधना

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

योग साधना में स्वास्थ्य का बहुत बड़ा महत्व है। इसलिए ही भगवान पतंजलि जी ने अष्टांग योग साधना में इसे तीसरे अंग के रूप में रखा है। जब तक व्यक्ति का स्वास्थ्य ठीक नहीं होता साधना ठीक से नहीं चल पाती। आयुर्वेद शास्त्र में स्वस्थ व्यक्ति की परिभाषा लिखते हुये आयुर्वेद के आचार्यों ने लिखा है कि जिसके शरीर के वात पित्त एवं कफ आदि दोष समान हैं जिसकी अग्नि समान हो जिसके शरीर की धातुऐं सम हों तथा जिसका मन इन्द्रियाँ एवं आत्मा प्रसन्न हो उस व्यक्ति को स्वस्थ शब्द से अभिहित किया जाता है। योग दर्शन में पतंजलि जी ने नौ प्रकार के विघ्नों का वर्णन किया है जिसमें सर्वप्रथम व्याधि आया है।

अष्टांग योग में तीसरे अंग के रूप में आसनों का निरूपण हुआ है—**'आस्यते अनेन इति आसनम्'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिस रीति से साधना में बैठा जाता है उसे आसन कहते हैं। आसन को दो भागों में बाँटा जाता है—एक तो वे आसन हैं जिन आसनों में बैठकर ध्यान साधना की जाती है जैसे पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन आदि। दूसरे वे आसन हैं जो विभिन्न प्राणियों के नाम से प्रचलित आसन है। योग शास्त्रों में कहा गया है कि जितनी भी जीव योनियाँ है उतने ही आसन है। हर प्राणी के अपने गुण स्वभाव के अनुसार क्षमताऐं अलग–अलग हैं, इसलिए असंख्य आसन हैं तथा उन–उन जीवों के नामों से प्रचलित है जैसे—मयूरासन, गरुड़ासन, मत्स्यासन, कच्छपासन आदि।

ऊपर यह बताया गया था कि स्वस्थ होने के लिए सम् दोष आवश्य. अर्थात शरीर में वात पित्त आदि समान अवस्था में होने चाहिये। इनमें से किसी एक की भी कमी या अधिकता से शरीर में दोष अथवा विकार आ जाता है। जिससे नाना प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन वात पित्त आदि दोषों के विकृत होने में आहार–विहार की विषमता ही कारण होती है। कुछ प्रज्ञापराध जन्य अथवा क्लिष्ट संस्कार जन्य रोग होते हैं जो शरीर तथा मन को पीड़ा पहुँचाते हैं शरीर में जठराग्नि समेत १३ प्रकार की अग्नि मानी जाती है। जो इस शरीर की क्रियाओं को संचालित करती है। शरीर में रक्त रस आदि सप्त धातुओं का समान रूप से विद्यमान रहना आवश्यक है। इनमें से किसी भी धातु का मात्रा से कम या अधिक बनना भी दोष फैलाता है जो किसी न किसी रोग को उत्पन्न कर देता है।

शरीर व मन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहा करता है। मन की एकाग्रता बहुत कुछ स्वास्थ्य पर निर्भर करती है योगी साधकों को चाहिये कि यौगिक आसन एवं व्यायाम को साधना का अभिन्न अंग बना लें। नियमित योगासन करने से

वात–पित्त–कफ आदि दोष साम्यावस्था में आ जाते है। जब ये साम्यावस्था में आ जाते हैं तो साधक की प्राणशक्ति बलवती हो जाती है जिसके विकसित हो जाने पर मन की एकाग्रता स्वयमेव बनने लगती है। हमारे गुरुदेव भगवान योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने साधकों को जीवन तत्व साधन एवं नैतिक व्यायाम करते रहने का उपदेश सदैव ही देते रहते। आज आहार–विहार की विषमता से मनुष्य को नाना प्रकार के रोग आक्रान्त कर रहे हैं शहरों में रहने वाले प्रबुद्ध जन योगासनों की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। योगासनों को करने से सारे शरीर में ठीक प्रकार से रक्त सचार होने लगता है जिसके अभाव में शरीर के जिस–जिस अंग में रक्त संचार की कमी हो जाती है वह अंग रोगों से घिर जाता है। शरीर में रोग होने पर मनुष्य औषधियों के प्रयोग से उपचार करता है किन्तु फिर भी रोग समूल नष्ट नहीं हो पाते हैं इसलिए व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि व्याधियों से दूर रहने हेतु उसे कम से कम १ घण्टा यौगिक व्यायाम अवश्य करना चाहिये।

यदि साधक प्रतिदिन दो से २.३० घण्टे मेरुदण्ड को सीधा रखते हुये ध्यानाभ्यास में बैठता है तो इससे भी पाचनतन्त्र तथा स्नायु एवं नाड़ियों में क्रियाशीलता बनी रहती है। इस प्रकार बैठने से भूख भी ठीक प्रकार से लगने लगती है तथा अपच गैस आदि विकार स्वतः ही दूर हो जाते हैं। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी द्वारा आविष्कारित जीवन तत्व साधन "यथा नाम तथा गुणः" इस उक्ति के अनुसार मनुष्य की जीवनीय शक्ति को बढ़ाने वाली है। इन क्रियाओं के अभ्यास से शरीर में नई स्फूर्ति एवं उमंग व उत्साह बना रहता है। साधकों का निजी अनुभव है कि प्रतिदिन नियमित जीवन तत्व साधन का अभ्यास करने से उनका मन स्वतः एकाग्र रहता है और उनका मंत्र जाप स्वाभाविक गति से होता रहता है। प्राणों का आयाम या विस्तार प्राणियों की आयु का निर्धारण करने वाला होता है। जो प्राणी जिस गति से श्वांस प्रश्वास लेता है उसकी उसी मात्रा में आयु हुआ करती है। जैसे सामान्यतः कुत्ते आदि जानवरों की श्वास प्रश्वास की गति काफी तीव्र होने के कारण १० या १२ वर्ष ही वे जी पाते हैं। गाय, बैल १८–२० वर्ष की आयु वाले होते हैं। हाथी ५५–६० वर्ष जिया करता है। कछुआ आदि प्राण गति के कम आवागमन के कारण ही १५०–२०० वर्ष का जीवन पाते हैं। सर्प की हजारों वर्ष की आयु होती है। 'शतायुर्वै पुरुषः' के सिद्धांतानुसार मनुष्य की आयु १०० से अधिक हो जाया करती है। ध्यानाभ्यास काल में अथवा मन की एकाग्रता हो जाने पर प्राणों की गति बहुत कम हो जाती है। सामान्यतया एक मनुष्य एक मिनट में १५ बार श्वास प्रश्वास लिया करता है। किन्तु एकाग्रता एवं लयता की अवस्था में श्वास प्रश्वास की गति बहुत कम हो जाती है। इसके विपरीत काम, क्रोध, भय, मैथुन तथा अत्यधिक परिश्रम से श्वास प्रश्वास की संख्या में वृद्धि होने के कारण ही मनुष्य की आयु कम हो जाया करती है। इसलिए योग साधक के लिए आवश्यक है कि वह नियमित आसन, बंध मुद्राएँ एवं अन्य क्रियाओं का अभ्यास करें एवं अपनी जीवन शक्ति का संवर्धन करें।

* * *

महाराजा भर्तृहरि: भोग और योग

—डा० विजय सिंह

मंगामल की कथा हम सभी सद्गुरु देव जी के मुखारविन्द से सुन चुके हैं। "अभिमत ध्यानद्वा"।। भगवान पातंजलि जी ने समाधि अथवा चित्त निरोध के तमाम उपाय बताये हैं वहीं एक यह भी उपाय बताया है कि चित्त जिसमें अति अनुरागित हो उसी का ध्यान करते-करते वृत्तियाँ उपसमता को प्राप्त हो जावेगी। इसी प्रकार "निद्रा अवलम्बन वा" अर्थात् निद्रावृत्ति को सतो-धारणा मुक्त करके सोने से योग निद्रा रूपी समाधि घटित हो जाता है। परन्तु ये दोनों सूत्र बिना समर्थ सद्गुरु के अनुगल हुये सफल नहीं हो सकता है। सामान्यतः आदमी विषयानुरक्त ही होता है। उन विषय को धारणा का वस्तु चुनने पर पतन अवश्य सम्भावी होगा। परिपूर्ण सद्गुरु सामान्यतः किसी संसारी व्यक्ति की यदि गहरी अनुरक्ति रही है तो उस मानस एकाग्रता को अपनी शक्ति से अभ्यन्तर एकाग्रता में परिणित कर देते हैं। मंगामल की आसक्ति जिस स्त्री में थी उसे पाने के लिये वह गहरे चिंता में डूबा रहता था। श्री प्रभुजी के पास संभ्रान्त लोग सपरिवार दर्शनार्थ आते जाते थे। मंगामल ने सोचा पंडित जी कोई वसीकरण सिद्धि वाले हैं। इनसे ही सहयोग पाकर हमें अपना कार्य सिद्ध करना चाहिए। यहाँ विस्तार में न जाकर हम देखेंगे कि कैसे श्री प्रभुजी ने पहले ही उस स्त्री द्वारा मंगामल से निश्चित धन की माँग की भविष्यवाणी तथा धन लेकर उसके पास जाने पर अपने अन्य यारों द्वारा उसकी हत्या करने की बात बता दी थी। सब वैसा ही घटित हुआ। इस पर भी उस स्त्री का पत्र पाकर मंगामल, धन लेकर स्टेशन गाड़ी पकड़ने हेतु पहुँचा। यहाँ पुनः श्री महाप्रभुजी अपनी कृपाकोर से मति–गति, उसकी बदल दी। वह सोचने लगा। महाराज जी सामान्य महापुरुष नहीं हैं। परिपूर्ण योगिराज हैं। उनका मुझसे कोई ,स्वार्थ न होते हुये। सब बातें पहले से बताकर सावधान कर दिये हैं। मक्ता! जब सब अब तक उनके कहे के अनुसार घटित हुआ है तो अवश्य ही उस स्त्री के पास जाने पर वह हमें धोखे से मरवा देगी। ऐसा सोचकर वैराग्य भाव पल भर को पैदा हुआ और वह हतास–उदास श्री प्रभुजी के चरणों में लौट आया। श्री प्रभुजी से प्रार्थना करके योग दीक्षा प्राप्त किया। श्री प्रभुजी उसे उसी स्त्री का ध्यान करने का आदेश दिये। वह वही ध्यान करता हुआ धीरे–धीरे सम्प्रज्ञात के दिव्य भाव में मापित हो उठा। उसे उसके मानवी रूप से विरक्तता तथा अभ्यान्तर के दिव्य–दर्शनो में आनन्द आने लगा था।

महाराजा भर्तृहरि के जीवन में पिंगला के माध्यम से, श्री गोरखनाथ जी की महती कृपा द्वारा कुछ ऐसा ही घटित हुआ प्रतीत होता है। महान रूपा–शक्ति के आगोश में भोग–भोग रहे भर्तृहरि के जीवन में, एक दिन योगिराज गोरखनाथ ने आध्यात्म बीज बोया था, जो आगे चलकर भोगी को अमर योगी बना दिया।

उज्जैन में भर्तृहरि की गुफा है। ये उज्जैन के राजा थे। कहा जाता है कि विक्रमादित्य इनके अनुज थे। उज्जैन महाकाल के दिव्य प्रभाव से मण्डित है। वामाचार एवं तन्त्र साधना, अघोर साधना की भी स्थली रही है। राजा भर्तृहरि की रानी पिंगला अनन्य सुन्दरी थी। सर्वगुण सम्पन्न, चित्तहारी संगीत, नृत्य में अद्वितीय माहिर थीं। कवि हृदय राजा रानी पिंगला के प्रेम–पाश में मुग्ध मूढ़ता को प्राप्त हो चले थे। राजकाज मन्त्रियों और वीर विक्रम पर छोड़कर, रात–दिन काम केलि में ही रमे रहते थे। चित्त उनका पिंगलामयी हो चला था। पिंगला के निकट न होने पर भी वे पिंगला के बिम्ब में डूबे रहते थे। श्रृंगार शतक में उनकी उद्‌बोध करने वाली कुछ सूक्तियों को देखें–

विश्वामित्र पराशर प्रभृतयो
वाताम्बुपर्णाशना स्तेपि
स्त्री मुखं पंकजं सुललितं दृष्टैव मोहंगताः
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुंजन्ति ये मानवा
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम्।।

अर्थात्–वायु, जल, वृक्षों के पत्तों के आहारी वे विश्वामित्र, पराशर आदि भी सुन्दर ललित स्त्री मुख को देखकर मोहित हो गये तो जो मनुष्य घृतसहित, दूध, दही, अन्नादि का आहार करते–रहते हैं यदि वे इन्द्रियों को वश में करलें तो समझना चाहिये कि विंध्याचल पर्वत भी समुद्र पर तैर सकता है।

राग रंग में आकण्ठ डूबे महाराज भर्तृहरि का उज्जवल पूर्व संस्कार धीरे–धीरे उदीयमान हो रहा था। एक दिन वे आखेट खेलते हुये घनघोर जंगल में अश्व को दौड़ाते आखेट के पीछे चले जा रहे थे। साथ के अश्वारोही सैनिक पीछे छूटकर पथ भ्रमित हो गये थे। जिस आखेट के पीछे अश्व दौड़ा रहे थे। वह भी गहन वन में में कहीं अदृश्य हो गया था। आगे चलते हुये क्षिप्रा के तट पर उन्हें हरिणियों के झुण्ड में सम्राट की भाँति तना हुआ बारहसिंघा दिखाई पड़ा। सधे हाथ से धनुष पर बाण चढ़ा संधान किया। बाण लक्ष्य पर लगा। मृग करुणनाद कर गिर गया और छटपटाने लगा। मृग की यह दशा देख हरिणियों का झुण्ड मृग छौनो सहित उसके निकट आया। हरिणियाँ क्रन्दन करती, धरती पर इधर–उधर विह्वल हो बारहसिंहे को करुण नेत्रों से देखती अश्रुपात करती रहीं। यह दृश्य देख राजा कुछ दुःखी हुआ।

तभी वन प्रांतर की ओर से, आकाश मार्ग से अचानक भगवान गोरक्षनाथ प्रकट हुये। जटाजूट मण्डित, कानों में कुण्डल, गौर वर्ण देखने में २५ अथवा ३० वर्ष के तेजोमयी रूप को देख राजा भर्तृहरि संकुचित हो उठे। गले से रुद्राक्ष, मस्तक पर भस्म त्रिपुण्डधारी योगिराज की स्वास्थ्य, शक्ति, तेज, मेधा, तथा आँखों में निःसंगता से अभीभूत राजा मन में भय मानता हुआ उनके चरणों में गिर पड़ा। योगिराज ने कहा–क्रूर क्षत्रिय राजन ! तू ने इस निरीह का क्यों

बध किया। क्या तू किसी को जीवन दान दे सकता है। क्या तू मरे को जिन्दा कर सकता है। अगर नहीं तो तुम्हें किसी का प्राण हर लेने का अधिकार कहाँ है। भर्तृहरि सभीत मौन खड़े लज्जा को प्राप्त हो रहे थे। तत्पश्चात। द्रवीभूत योगिराज ने संजीवनी मंत्रोच्चार द्वारा भस्म उस बारहसिंघे पर छिड़का। महान आश्चर्य वह नरहरिण जीवित हो उठा अत्यन्त कृतज्ञ भाव से योगिराज की ओर देख अपनी हिरणियों के झुंड में जा मिला। यह सब देख भर्तृहरि पुनः योगिराज के चरणों में गिरकर बार–बार पुनः खेद प्रकट करते हुये अपना शिष्य बना लेने का आग्रह करने लगे।

सर्वअर्न्तयामी गोरक्षनाथ जी ने कहा–भर्तृहरि ! तेरी प्रीति पिंगला में है। हर पल उसकी सूरत तेरे मन में रहती है। क्या तू पिंगला को पहचानता है।

राजा भर्तृहरि ने कहा–प्रभो ! वह मेरी प्रिय भार्या है उसे क्यों कर नहीं पहचानूँगा वह सच ही मेरे चित्त में बसी हुयी है।

श्रीगोरक्षनाथ जी ने तभी एक और योग चमत्कार रच दिया। हजार एक सी रूपवती, एक सी वेशभूषा में मुस्कराती पिंगलायें खड़ी थीं। राजा महान आश्चर्य से चकित रह गया। सभी पिंगलाओं ने एक ही तरह के चितवन त्रिभंगी मुद्रा में राजा का अभिवादन कर रही थी। योगिराज के आदेश से भर्तृहरि प्रत्येक के पास जाकर छूकर, बात कर परखता रहा। परन्तु वह निर्णय न कर सका कि उसकी पिंगला से भिन्न कौन है ?

हारकर राजा नाथ के श्री चरणों में बार–बार दण्डवत करने लगा और बोला–हे योगिराज, मेरी क्या सामर्थ्य जो इन पिंगलाओं में अपनी को पहचान सकूँ। गोरखनाथ जी ने कहा–वत्स राजन ! जब पहचानता ही नहीं तो प्रेम कैसे करता है। जा ! अभी राज–काज देख समय आने पर तुझे योग–दीक्षा दूँगा। ऐसा कहकर वे वहीं के वहीं अर्न्तध्यान हो गये।

राजधानी को लौटते हुये भर्तृहरि के अर्न्तजगत में एक अपूर्व रुपान्तरण घटित हो चुका था। अब मन भोग–विकास की असारता और योग की महत्ता को बार–बार तौलता रहता। प्रश्न जटिल थे। पहले की भोगवृत्तियाँ और जंगल में प्रत्यक्ष हुई योगानुभूतियाँ राजा के अन्दर अन्तर द्वन्द्व पैदा कर दी थी। अब रह–रह कर योगिराज गोरखनाथ की तेजोमयी मूर्ति मन में स्थापित हो जाती थी।

राजा का कुछ दिन इसी अवस्था में व्यतीत हुआ। एक दिन राज दरबार में अचानक एक महात्मा का आगमन हुआ। राजा ने उनका यथोचित सम्मान किया। महात्मा ने अपने कंथा में से एक आम पका हुआ निकाल कर राजा को देते हुये कहा कि यह अमर फल है राजन जो इसका सेवन करेगा उसे अमरत्व के साथ चिर यौवन और महत बल की प्राप्ति होगी। राजा कृतज्ञता पूर्वक उस फल को ग्रहण करता है। उस फल को लेकर स्वयं न खाकर अपनी प्राण–प्रिया रानी पिंगला को उसकी (फल की) महत्ता को बताकर देता है। कहता है रानी तुम

इसे पवित्र होकर खाना जिससे तुम्हारा चिर यौवन नूतन बना रहे। इधर राजा के आखेट प्रवास के दौरान रानी पिंगला अपने एक अश्व–प्रशिक्षक पर मुग्ध हो अभिसार करने लगी थी। उस फल को उस अश्ववाहक को दे दिया। क्योंकि वह रानी पिंगला का चित्त चुरा चुका था। उस फल की महत्ता को जानकर अश्वपालक ने उज्जैनी की गणिका सर्वमंगला को दे दिया क्योंकि अश्वपालक के चित्त को उस गणिका ने चुराया हुआ था। सर्व मंगला फल को पाकर विचारती रही। मैं वैश्या । अमर होकर कौन सा सुकृत करूँगी। यह फल तो न्यायप्रिय हमारे महाराज भर्तृहरि के योग्य है। वे अमर हो प्रजा पालन करें। ऐसा सोच कर। दूसरे दिन प्रातः राजसभा में जाकर उस आम्रफल की महत्ता से परिचित कराते हुये गणिका ने राजा को भेंट कर दिया। राजा का अर्न्तमन काम के प्रपंच को तड़ित वेग से समझ गया।

या चिन्तयामि सतत सो मयी विरक्ता
साप्यन्यमिच्छाति जनं स जनोऽन्यसक्तः
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् ता च त च मदनं च इमां च मां च।

जिस पिंगला का मैंने सतत चिंतन किया वह मुझमें नहीं, किसी अन्य में आसक्त है और वह किसी अन्य में और वह (गणिका) मुझमें। इस काम को धिक्कार है। रागानुरागी भर्तृहरि के मन में परम वैराग्य जाग उठा। राजकाज अनुज विक्रम को सौंप जंगल में गुरु गोरखनाथ की खोज में निकल पड़े।

भगवान, गोरक्षनाथ ने शक्तिपात कर राजा भर्तृहरि के विराग युक्त चित्त को अर्न्तमुखी बनाकर समाधिष्ठ कर दिया और उपदेश किया–

एक स्तम्भ नवद्वारं गृहं पंचाधिदैवतम्।
स्वदेहे ये न जानन्त कथं सिद्धयन्ति योगिनः
षटचक्र षोडशाधारं द्विलक्ष्यं व्योम पंचकम्।
स्वदेहे ये न जानन्ति, कथं सिद्धयन्ति योगिनः।

(गोरक्ष संहिता)

भर्तृहरि के अर्न्तजगत में नाद और ज्योति का एक बारगी प्रवाह चित्त को शुन्यत्व में बलात् विलीन करता गया। वे गहरे समाधि में चले गये।

कवि हृदय राजा भर्तृहरि सद्गुरू कृपा से अमर योगी हो गये।

हमारे आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान राजा भर्तृहरि भांजे गोपीचन्द की योग कथायें अपने निज मुख से सुनाते रहे। श्री प्रभुजी (श्री गुरुदेव भगवान) गोरखपुर में गोरखनाथ मन्दिर में प्रवचन करते हुये बोले–देखो ! मैं जो कह रहा हूँ उसे भगवान मच्छेन्द्रनाथ और गोरखनाथ सुन रहे हैं। वे आज भी विद्यमान हैं। वे अमर गुरु हैं।

श्री गुरुदेव भगवान अपने प्रवचन में एक अपनी उदाहरण देते हुये बताते थे कि—कहीं के योग प्रचार कार्यक्रम (स्थान का नाम मुझे विस्मरण हो गया है) में एक अति—वृद्ध ने मेरे पास आकर अपनी आप बीती सुनायी थी। उसका कहना था कि जब वह पच्चीस वर्ष का जवान था। एक शा। दो महात्मा उसके घर पर आकर रात्रि—निवास करने की इच्छा जाहिर की। उसने सहर्ष स्वीकार कर प्रार्थना पूर्वक घर के बाहर दालान में नये बने दो तख्तों को धो पोंछ कर बिछा दिया। वे दोनों दीर्घकाय महापुरुष उस पर लेट गये। मानो बहुत थके हों, दूर से चलकर आये हों। उसने बताया मैं अति गरीबी के कारण कुछ सेवा करने की इच्छा रखते हुये भी न कर सका। वे दोनों महात्मा मानो मेरे मन की बात जान गये हो। अतः हमसे बोले—बच्चा चिन्ता मत करो हमें कुछ भी आवश्यकता नहीं है। मात्र विश्राम करना चाहते थे सो तुमने भली व्यवस्था की है। मैं उनके आस्वस्त करने पर, संकोच पूर्वक बारी—बारी से उन महात्माओं के चरण दबाता रहा। वे विश्राम करने लगे और हमें भी विश्राम करने की आज्ञा दी।

प्रातः जब जल्द ही उठकर इस आशय से बरामदे में गया कि महात्माओं को नित्यकर्म में अपनी सेवा प्रदान करुँ तो देखा। वहाँ वे लोग नहीं थे। मैं प्रतीक्षा करता रहा। सोचा हो सकता है बाहर डोल डाल में गये हों। परन्तु सूर्य आसमान पर आ गया। वे लोग नहीं लौटे। फिर हम एक बार बरामदे में गये। वहाँ जिन तख्तों पर महात श्राम किये थे हमने देखा उन पर दो कागजों पर कुछ लिखकर चिपकाया हुआ है। उत्सुक ुके पढ़ा तो आश्चर्य से चकित रह गया। अपने भाग्य पर जहाँ प्रसन्न हुआ वहीं उनकी यथेष्ठ सेवा न कर सकने का मन में मलाल सालने लगा।

कागज पर लिखा था। हमारे संस्कार थोड़े तुम्हारे साथ थे, अतः हम भर्तृहरि और गोपीचन्द तुमको दर्शन देने आये। हमारी खोज मत करना। इन कागजों के तख्त पर लगे रहने तक तुम्हारे सारे संकट हमारी कृपा से दूर होते रहेंगे। धन—धान्य से परिपूर्णता होगी। वह बोला—महाराज जी, उस दिन से पचासों वर्ष गुजर गये। जैसा आशीर्वाद उनका था वैसा ही घटित होता गया। आज सब कुछ खेती—बारी पुत्र—कलत्र से सम्पन्न हूँ। परन्तु होनी देखिए हमारे अभी कुछ वर्ष पूर्व पौत्र हुआ। जब वह चलने लगा तो किसी दिन उन तख्तों वाले कमरे में जिसकी पूजा—अर्चना हम लोग वर्षों से सम्भाल करते रहे हैं चला गया। किसी ने यह देखा नहीं। वह मंद भाग्य उन हस्ताक्षरित कागज की चिप्पियों को फाड़कर मुँह में डाल चबाता रहा। अपवित्र कर दिया। तब से हमारे ऊपर संकट के बादल घिरने लगे हैं। मैं अति कष्ट में हूँ। बहू—पुत्र कलह प्रधान जीना दूभर कर दिया है।

❊ ❊ ❊

अमर पंथ की गैल बतावे

डॉ० रूद्रदत्त चतुर्वेदी

गुरू शब्द भारतीय संस्कृति की देन है जिसका समानार्थी शब्द न शिक्षक है, न अध्यापक। गुरू और गुरूपूर्णिमा का महत्व समझने के लिए पूर्व और पश्चिम के मौलिक चिन्तन का भेद समझना आवश्यक है। जहाँ पश्चिम का अध्यापक लौकिक सूचना देने वाला है वहीं भारत का गुरू लौकिक ज्ञान एवं सूचना से उत्पन्न अहकार को मिटाकर आत्मा का परमात्मा से मिलन कराकर सत् चित आनन्द की प्राप्ति का पथ प्रदर्शक ही नहीं बल्कि उसे प्राप्त भी कराता है। वह–''**कर्त्ता करै न करि सकै, श्री सद्गुरू करें सो होय**'' वाली स्थिति को प्राप्त देह धारी पुरुष है। वह मनुष्य को उसकी मूल अवस्था, (अंधकार, अज्ञान और माया से भ्रमित) से मुक्त कर परमात्मा की अवस्था (सत्यं, शिवम्, सुन्दरम्) तक पहुँचाने वाला सेतु है। गुरू आधा मनुष्य और आधा परमात्मा है-- ऐसा आचार्य रजनीश मानते हैं। तुमने जो कहा यदि वह गुरू ने सुन लिया तो समझ लो कि परमात्मा ने सुन लिया। गुरू ऐसा प्राणी है जिसके हाथों में एक हाथ तुम्हारा और एक हाथ परमात्मा का है। तभी तो कबीर कहते हैं--

''हरि रूठें गुरु ठौर है, गुरू रूठे नहिं ठौर''

प्रकृत्या प्राणी दो प्रकार के होते हैं। प्रथम दैवीय तथा दूसरे आसुरी। जिसे भारतीय संस्कृति में देवासुर संग्राम के रूप में प्रतीक देकर समझाया गया है। यदि देवासुर संग्राम का इतिहास देखें तो पता चलता है कि अधिकतर और प्रारम्भ में आसुरी शक्तियाँ ही विजयी होती रहीं है और जब देवता परमात्मा की शरण गये तभी पुनः विजयी हुए। अर्थात् जब व्यक्ति आसुरी प्रवृत्ति से दूर होकर पवित्रता और सदाचार का मार्ग ग्रहण करता है तभी सत्व गुण का विकास होकर वह देवत्व प्राप्त करता है। पवित्रता शारीरिक गुण है और सदाचार मानसिक गुण है। अतः प्राणी को चाहिए कि वह तमोगुण, रजोगुण और सतोगुण को त्यागकर परमात्मा से नाता जोड़े। इसलिए भगवान श्री कृष्ण गीता में ''**निस्त्रैगुण्यो भवार्जुनः**'' की आज्ञा देते हैं।

परन्तु प्रश्न उठता है कि पुरुष प्रकृति से नाता कैसे तोड़े और कौन बताये श्रेय मार्ग ? उत्तर एक ही है–वे हैं सद् गुरूदेव। यदि उच्च आध्यात्मिक व्याख्या करें तो–''**पूर्वेषामपि गुरूः कालेनानवच्छेदात्**'' अर्थात् वह (ईश्वर) पूर्व उत्पन्न हुए ब्रह्मादिको का भी उपदेष्टा है, वह सर्वकालिक है, सदैव है और सदैव रहेगा। अतः हमें क्षण–क्षण उसका ध्यान करते रहना चाहिए। साथ ही इस प्रभुसत्ता की ओर बढ़ने और अनिर्वचनीय आनन्द में डूब जाने की प्रेरणा जो ऋषि महर्षि अपने वाक्यों और आचरण से देते रहे हैं वे सभी हमारी सद्गुरू श्रृंखला में आते हैं

इसीलिए वेदमंत्र आदेश देते हैं—"आचार्यवान् भव" ताकि अभ्युदय और निःश्रेयस का मार्ग सुलभ और सरल हो। आचार्य और सद्‌गुरू वही है जो अपने अनुगामियों को सदाचरण की शिक्षा देकर उन्हें स्वर्ग और अपवर्ग दोनों की प्राप्ति करा दें। इसीलिए ही ऐसे आचार्य को गुरू कहा गया है अर्थात्

गु कार स्त्वन्धकारस्य, र कार तन्निरोधकः
अंधकारं निरोधित्वा, गुरूरित्यभिधीयते।।

पाश्चात्य शिक्षा में शिक्षक और विद्यार्थियों के बीच "बुद्धि" का सम्बन्ध है जो सूचना के आदान प्रदान तक सीमित है। अतः वहाँ शिक्षा का प्रतिदान धन है। परन्तु यहाँ ज्ञान प्राप्ति के लिए तीन गुणों की आवश्यकता है—श्रद्धा, तत्परता और संयम या नियमितता। बिना गुरू में श्रद्धा के अन्य दो गुण नहीं आ सकते। श्रद्धा अकारण होती है क्योंकि गुरु और शिष्य हृदय से जुड़े होते हैं। प्रेम के परम रूप को श्रद्धा कहते हैं। गुरुदेव में श्रद्धा के उपरान्त एक ही कामना रह जाती है और वह है मुक्त होने की कामना। श्रद्धा अतर्क्य होती है। स्वामी माधवानन्द सरस्वती को एक नागा बाबा ने देवी सिद्धि का मन्त्र दिया। कुछ दिनों बाद पीछे से (निर्जन में) आवाज आई कि मंत्र गलत है। स्वामी जी ने पूछा कि आप कौन हैं—उत्तर मिला—भैरव। सामने क्यों नहीं आते ? उत्तर था—मंत्र के तेज के कारण। तब माधवानन्द का उत्तर था कि जिस मंत्र के तेज से आप सम्मुख नहीं आ सकते वह मंत्र सत्य है क्योंकि मेरे गुरुदेव द्वारा दिया गया है।

कभी-कभी कथित बुद्धिजीवी प्रश्न उठाते हैं कि क्या गुरू मूर्खों को भी ज्ञानवान बना सकते हैं तो सर्वप्रथम हमें कबीर याद आते हैं। कबीर कितने पढ़े थे ? परन्तु योग विद्या के प्रभाव से उनके ज्ञान चक्षु उन्मीलित थे। उन्हें पढ़कर आज कितने पी-एच०डी० और डी०लिट् बन गये हैं ? कबीर कहते हैं—

"गुरू मानुष करि जानते, ते न कहिए अंध"

फिर भी एक शंका कि सद्‌गुरू के ज्ञानदान की समय सीमा क्या है ? उत्तर है—क्षणमात्र। आचार्य शंकर के शिष्य उनके एक अनपढ़ शिष्य से चिढ़ते थे। क्योंकि उसकी आचार्य में अपार श्रद्धा थी। एक दिन आरती का समय हो गया तो शिष्यों ने विलम्ब का कारण पूछा निरक्षर की प्रतीक्षा सुनकर शिष्य मुस्कराये। परन्तु आश्चर्य कि शिष्य ने आकर बिलम्ब हेतु श्लोक बद्ध छंदों में गुरू वंदना की। यही निरक्षर शिष्य गुरुकृपा से आचार्य पद्मपाद के नाम से प्रसिद्ध हुए।

उतना ही नहीं श्री गुरुदेव में—**''यादृशी भावना यस्य, सिद्धिः भवति तादृशी।''** बीसवीं सदी में **''आटो बायोग्राफी आफ ए योगी''** में जिन महावतार बाबा जी का वर्णन आता है—वे अजर देहधारी (नाडी ग्रन्थ में वर्णित—यह ग्रन्थ भृगु संहिता की भाँति दक्षिण भारत में प्रचलित है) के रूप में महाप्रभु श्री रामलाल जी के रूप में (१८८८ से १९३६ तक) उत्तर भारत के विख्यात योगिराज एवं सद्गुरु रहे हैं। एक बार शीशागिरि की पहाड़ियों में उनके एक श्रद्धालु शिष्य को एक ब्रह्मराक्षस ने भक्षण करना चाहा। शिष्य ने प्रभुजी का अनन्य श्रद्धा से स्मरण किया। उसे शक्ति मिली। आकाशवाणी हुई। ब्रह्मराक्षस भयभीत होकर लौट गया।

गोरखपुर (उ०प्र०) में गोरक्षनाथ मन्दिर नाथ संप्रदाय का एक प्रसिद्ध सिद्धपीठ है। यह प्रभुजी (श्री रामलाल) के योग-परिवार का सौभाग्य है कि हमारे पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन के कर कमलों से गोरक्षनाथ मन्दिर के दिग्विजय सभागार का उद्घाटन कराया गया था। दूसरी बार महन्त दिग्विजय नाथ जी की पुण्य तिथि पर आयोजित **''योग सम्मेलन''** में सद्गुरु तत्व की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा था कि योगी कालजयी होता है, वह सर्वव्यापी, दूरश्रवण और दूरदर्शन की शक्ति रखता है। उन्होंने यह भी कहा कि मैं जो कुछ बोल रहा हूं उसे गुरु गोरक्षनाथ और भगवान मत्स्येन्द्रनाथ सुन रहे हैं। दूसरे शब्दों में गोरक्षनाथ मन्दिर--मन्दिर मात्र न होकर एक सिद्धपीठ है।

और अन्त में गुरुपूर्णिमा का महत्व है। इसे व्यास पूर्णिमा भी कहते हैं। गुरु शब्द की व्याख्या के अनुसार संसार में उन पूजनीय विभूतियों को गुरु कहा जाता है जिनके वचन, मार्गदर्शन और आचरण से व्यक्ति अज्ञान—अन्धकार की परिधि से निकलकर ज्ञान के उस प्रभामण्डल में पहुँच जाता है जहाँ से उसे अपना जीवन लक्ष्य न केवल दिखाई देता है वरन उसे पा लेने में भी सक्षम हो जाता है।

महर्षि व्यास ने महाभारत, श्रीमद्भागवत और गीता आदि ग्रन्थों की रचना करके वैदिक संस्कृति की रक्षा और मानव जीवन को सुसंस्कृत बनाने की प्रेरणा दी। इसीलिए कृतज्ञता ज्ञापन के रूप में इस दिन हम भगवान व्यासदेव का स्मरण करते हैं। मानव को मानव तथा अवतार श्रेणी में स्थापित कराने का श्रेय भी इन्हीं सद्गुरुओं को है। इसीलिए वेद **''आचार्यवान् भव''** की सीख देते हैं। गुरुपूर्णिमा का पर्व हमें गुरु सान्निध्य, सेवा और श्रद्धा से उनके समीप रहकर ज्ञानार्जन की प्रेरणा प्रदान करने के लिए आया करता है। इससे प्रेरणा ग्रहण करना हमारा कर्त्तव्य है और यही श्रेयस्कर है।

❊ ❊ ❊

भाव-प्रसून

श्रीमती सरिता भारद्वाज (दिल्ली)

प्रभु हाँ बड़ी देर से ठाड़ी।

सुमन सुमन के हार लिए, मैं बाट निहारूँ कब से ठाड़ी।
नयनन दीप धरे दरवाजे, बुझे पड़े अंसुवन जल भारी।
दर्शन की अभिलाषा से मेरे हिय में उठति हिलोरें भारी।
बड़े भाग इस जनम मिले हो, करो न अब तुम मोहि पिछाड़ी।
कब तक तड़फाओगे गुरुवर, दया करो मैं कब से ठाढ़ी।
कंठ भयो अवरुद्ध मेरो अब, कैसे कहूँ अब मेरी बारी।
अज्ञानी हूँ भजन न जानूँ, देर करो ना जानि अनाड़ी।
सरिता कहे अब प्रभु अपने सो, जैसी भी हूँ हूँ तो तुम्हारी।।

जौं दर्शन पाऊँ एक बार।

नैन कपाट बन्द करि राखौ, जान न देहौ अब की बार।
प्रेम अश्रु की वर्षा से तव, पद पंकज पावन दूँ पखार।
श्रद्धा, भाव प्रेम सुमनों के, उर विशाल पहिराऊँ हार।
हृदय सिंहासन पर बैठा कर, श्वास–श्वास से करूँ बयार।
नैन झरोखों से मैं सुन्दर मूरति निरखूँ बार–बार।
पूर्ण समर्पण प्रभु चरण में, शीर्ष झुकाऊँ बारम्बार
अब की नाथ दया कर दो तुम, भव सागर से कर दो पार।।

❋ ❋ ❋

संस्कार शक्ति व साधना शक्ति (भाग ७)

कु० रुक्मिणी वर्मा, सहारनपुर

"संस्कार शक्ति 'व साधना शक्ति" नामक प्रकरण को आगे बढ़ाते और "अन्न के संस्कार" पर चर्चा करते हुए स्पष्ट किया गया था कि हमारे द्वारा ग्रहण किये गये अन्न के सूक्ष्म भाग से ही हमारा मन बनता है। अतः मनुष्य जिस प्रकार का अन्न खाता है, उसी प्रकार का उसका मन बन जाता है। इसलिए गीता में अखिल लोक पावन जगदात्मा श्री कृष्ण ने सात्विक, राजसी व तामसी प्रवृत्ति वाले प्राणियों को प्रिय लगने वाले आहारों का पृथक्–पृथक् श्लोक में वर्णन किया है। गीता के 'सात्विक आहार' के विषय में चर्चा करते हुए इस बात पर भी बल दिया गया था कि वह आहार नेक कमाई का भी होना चाहिये। नेक कमाई केवल परिश्रम वाली कमाई ही नहीं कही जाती, अपितु नेक भावना सहित परिश्रम करके कमाई गई दौलत को ही नेक कमाई कहा जायेगा। इस बात को स्पष्ट करने के लिए दो मित्रों (गेहूँ व चमड़े के व्यापारी) का उदाहरण भी दिया गया था। अन्न का प्रभाव किस प्रकार मन की प्रवृत्ति को बदल देता है, इस विषय में भी महाराज शल्य तथा दुर्वासा ऋषि का उदाहरण दिया गया था। आइये अब इसी विषय पर और अधिक चर्चा की जाये ताकि विषय अधिक स्पष्ट होता हुआ सरलता से समझ आ सके और वे साधक गण,जो साधना तो करते हैं, परन्तु अपने खानपान पर संयम न करके अपनी सारी साधना पर पानी फेर देते हैं, फल स्वरूप उनकी साधना में शक्ति का संचार नहीं हो पाता और शनैः शनैः वे साधना से ऊबने लगते हैं तथा ईश्वर पर से उनका विश्वास उठने लगता है और बार–बार धर्म तथा गुरु और ग्रन्थ बदलते रहते हैं। अतः इस विषय को बहुत बारीकी के साथ समझना होगा–

"अन्न के संस्कार"

सन्त तुलसी दास जी ने श्री राम चरित मानस में बहुत ही सुन्दर दोहा लिखा है–

कूकर-सूकर करत हैं खान-पान-रस-भोग।
तुलसी वृथा ना खोइये, यह तन भजने योग।।

अर्थात्–खाना–पीना, रसपान करना (इन्द्रिय शक्ति खर्च करना) यह कार्य तो कुत्ते, सुअर अर्थात्, पशु–पक्षी भी बहुत अच्छी प्रकार से कर लेते हैं। परन्तु यदि मनुष्य केवल खान–पान, रस–भोग के लिए ही जीवन व्यतीत कर देता है। तो कौन बड़ी बात है ? अर्थात् यह कार्य तो वह पशु–स्तर के तुल्य ही करता है। इसलिए इस शरीर को केवल अन्न का भण्डार न बनाओ यह तो भजन करने के लिए मिला है, इसे पशु–वृत्ति अपनाकर मत खोइये क्योंकि नर–तन सम नहिं कवनिऊ देही, जीव चराचर जाचत तेही। मनुष्य योनि सबसे दुर्लभ योनि है, इसमें नवीन कर्म करके पुराने कर्म (प्रारब्ध) को उसी प्रकार काटा जा सकता है, जिस प्रकार काँटे से काँटा निकाला जाता है। स्वर्ग नरक, अपवर्ग निसैनी। ज्ञान–बिराग–भगति शुभ देनी। यह शरीर एक

प्रकार की सीढ़ी है, इसे प्रयोग करने के तरीके के ऊपर निर्भर करता है कि इसका अवलम्ब लेकर हम स्वर्ग जाते हैं, नरक जाते हैं अथवा मोक्ष द्वार तक पहुँचते हैं। यह नर देह ज्ञान, वैराग्य, भक्ति को प्राप्त करने का साधन धाम है। अब जीव के ऊपर निर्भर है कि इसका प्रयोग कूड़ा–कचरा खाने में करता है या फिर अमृत रस जो इस घट के भीतर है। पशुओं की तरह पशुओं को मारा, पेट में डाला, पचाया और पशु वृत्ति धारण की। भगवान भी सबके अन्दर कल्पतरु बनकर बैठे हैं। जीव जैसी इच्छा करता है, वैसा ही फल मिल जाता है। इस दुनिया में भगवान नित्यप्रति हरपल सबकी सुनते हैं, फिर भी दुनिया धोखे में है और कहती है कहाँ है भगवान। अरे ! मास मदिरा वालों की भी सुनता है वो परमात्मा। अगले जन्म में चील, कौआ, गिद्ध, सिंह, सियार, सुअर, माँसाहारी पशु बना देता है उनको, और कभी–कभी शिकार करने नहीं, शिकार किये जाने वाले दुर्बल जीव जन्तु बना देता है। दोनों प्रकार की योनि भुगतवा देता है। कि कटकर देख, तड़फकर देख, भाला, तलवार, चाकू का प्रहार सह कर देख, पंजों का शिकार होकर देख कि कितना असह्य दर्द होता है–जाके पैर ना फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई। और मांसाहारी पशु बनाकर जीवन पर्यन्त गला–सड़ा माँस नोच–नोच कर खाने पर मजबूर होना पड़ता है, ऐसी ग्रन्थि शरीर के अन्दर डाल देता है कि हरी पत्ती तक खाने का सौभाग्य नहीं मिलता। बस पशुओं का, कीड़े–मकौड़े का, जलचरों का माँस खाकर ही पेट भरता है। चिकनी–चुपड़ी रोटी तो सपने में भी नहीं सूखी रोटी भी देखने को नहीं मिलती। तार्किक बुद्धि ऐसे–ऐसे प्रश्न करती है कि सब कुछ भगवान ने ही तो बनाया है। सात्विक, राजसी, तामसी आहार उसने क्यों बनाये ? केवल सात्विक अन्न ही पैदा करता। अरे मूर्ख ! उसने तो देव–असुर दोनों जातियाँ पैदा की। तेरे ऊपर निर्भर करता है कि कौन सी वृत्ति अपनाकर, कौन सा आहार खाकर किसके समूह में मिलना चाहता है। देवताओं को प्रसन्न मुद्रा और दानवों को शोकाकुल, भय, चिन्ता, मुद्रा मिलती है। अब तू ही बता कि दानवों वाला आहार तो दानवों के लिए था। तू मानव होकर देवों वाला आहार क्यूँ नही खाता ? क्यूँ देव नही बनता ? क्या उसने मेवा–मिष्ठान पैदा नहीं किये पेट भरने के लिए ? तामसी आहार देख–लाल–लाल, दुर्गन्ध वाला, गला हुआ, कटा हुआ नसजाल वाला, बासी, कच्चा भी न खाया जाये, देखने में कुरूप, हड्डी वाला, बिगड़ी हुई आकृति। और इधर सात्विक आहार देख, मधुर, रसीला, चिकना, देखने में पीला, लाल, हरा सुन्दर धारियों वाला, सुन्दर बगीचे में उगने वाला, हरी पत्तियों के बीच लगने वाला, सूर्य की धूप से पकने वाला, सुगन्धित हवा में पोषण पाने वाला, वसुन्धरा का रस अपने अन्दर संजोने वाला, जी ललचाने वाला, अति स्वादिष्ट, कच्चा भी खाया जाने वाला, पत्ती भी ग्रहण करने योग्य, जड़ें भी ग्रहण करने योग्य (कुछ शाक जड़ों के, कुछ तनों के कुछ पत्ती के रूप में खायी जाती है) देखने में आकर्षक, मनमोहक। अब तू ही बता कि इस विश्व में सभी प्राणियों में अति आकर्षक नर देह पाकर तू कुरूप भोजन ग्रहण करता है तो तुझसे बड़ा मूर्ख

कौन होगा ? पशु इतनी समझ तो करते हैं कि अपनी श्रेणी का भोजन ही करते हैं। तू तो न देव रहा, न दानव, न मानव, न पशु। कोई अस्तित्व टिकाया तूने इस पृथ्वी पर ? क्या भगवान ने बुद्धि नहीं दी ? फिर इस्तेमाल करने में तेरा दोष है कि नहीं ? और दोषारोपण करता है परमात्मा पर।

बहुत से व्यक्ति माँसाहारी तो नहीं होते, परन्तु सात्विक प्रवृत्ति वाले भी नहीं होते, राजसी आहार अधिक करते हैं। हर समय मिर्च–मसाला, पूड़ी पकवान, शराब, टिक्की, समौसा, गुलाब जामुन, सांभर, पानी–बताशा, चाट–पकौड़ी, छोले। बस सुबह से शाम तक चटपटा, खट्टा–मीठा, तीखा, तला हुआ, भुना हुआ, चटपटा खाकर पेट को चरपरी भट्टी बना डालते हैं। और बात करो तो मुख से भी मिर्च भरी अंगारे जैसी भाषा उगलते हैं। दिमाग में भी चरपरापन, मार–धाड़ हाय हुल्लड़। भाई–भाई में रोज घरों में एक नयी दीवार। खेंचमतानी में सारी उम्र बिता देते हैं। रक्तपात मचाने में कोई लिहाज नहीं। घर–घर मुकदमें। संतोष की रोटी तो सपने में भी नहीं खा पाते। जो मिला उसमें सहज सन्तोष नहीं, अपनी भुजाओं का इस्तेमाल कर्म करने में नहीं लगाते। बाप का माल मिल जाये, जितना मिला उसमें भी सन्तोष नहीं, मुझे कम क्यों मिला। कबीर दास जी कितना सुन्दर लिखते हैं–

सहज मिले सो दूध सम, माँगा मिले सो पानी।
कहे कबीर वह रक्त सम, जामे खैंचा-तानी।।

अर्थात् जो वस्तु सहज प्राप्य हो जाये वह दूध के समान है, मन के भावों का पोषण करती है, सन्तोष धन की प्रदाता है। माँगा मिले सो पानी अर्थात् माँगकर ली तो क्या ली पानी के समान है परन्तु जो वस्तु अधिक खेंचा–तानी के बाद मिलती है वह खून के समान है अर्थात् त्याज्य है।

अब बताइये हमारे मन की शान्ति और अशान्ति के कारण हम स्वयं हैं या नहीं। इसलिए भावों को शुद्ध रख करके, परिश्रम करके नेक कमाई वाला सात्विक आहार ग्रहण करें जिसमें कुदरती प्रभु की ओर आकर्षण बढ़े, उसके गुणगान करके चित्त में स्थिरता बढ़े चित्त की वृत्तियों का निरोध होकर आत्मा का परमात्मा से मिलन हो। साधक मन पर खान–पान का किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है इसके लिए कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं–एक महिला साधक (स्थान का नाम नहीं दिया जा रहा है) ऊँची ध्यान स्थिति को पा गयी। धीरे–धीरे घर में रोज शाम को सत्संग भी होने लगा, फिर दोनों समय (सुबह–शाम) कीर्तन व सत्संग चलने लगा। परन्तु सत्संग में आने वाली महिलाओं को एक लत पड़ गयी। कभी कोई अपने घर से दाल सब्जी–रोटी बनाकर लाती, कभी कोई। इस प्रकार सब लोग कीर्तन करके मिल बैठकर एक साथ भोजन करती। यह तो आवश्यक नहीं है कि कीर्तन अथवा सत्संग में आने वाला हर साधक सतोगुण प्रधान परिवार से ही सम्बन्ध रखता हो। किसी का पिता अथवा पति या फिर

बेटा अधर्म की कमाई वाला हो सकता है। अधर्म की कमाई से तात्पर्य रिश्वत, कालाबाजारी, भ्रष्टाचारी व स्वार्थ की, दूसरों का अहित करने वाली कमाई। उस अन्न को शनैः–शनैः ग्रहण करते–करते उस ध्यान–प्रधान महिला का ध्यान ऊँचे स्तर से गिरने लगा। ना पहले जैसी अन्तर्नुभूति रही न मस्तक पर तेज। फिर धीरे–धीरे बाहर भी खाना–पीना शुरू कर दिया। परन्तु अपनी गिरती हुई मानसिक एकाग्रता से चिन्तातुर भी हो जाती थी। बहुत समय बाद उन्हें अहसास हो गया कि यह सब बाहर के अन्न का प्रतिफल है। उस महिला साधिका ने बहुत तपस्या करने के बाद अपने गुरुदेव से शक्तिपात दीक्षा पायी थी। योग मार्ग में किन–किन कारणों से पतन हो जाया करता है, इस विषय में कम ज्ञान रखती थी। परन्तु समय रहते सँभल गयी और सत्संग के बाद भण्डारा प्रथा बन्द कर दी।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या दूषित अन्न का प्रभाव साधक मन पर ही पड़ता है अथवा साधारण मन (जो साधना नहीं करते) पर भी। इसका जवाब एक दृष्टान्त द्वारा दिया जा सकता है। आप एक सफेद चादर लीजिए यदि उस पर कोई दाग न हो अथवा दो–चार दाग हों। उस चादर पर आप कुछ छींटे नीली अथवा लाल रोशनाई के छिड़क दीजिये। आप देखेंगे कि आपकी चादर पहले से खराब हो गयी है। अब एक दूसरी चादर लीजिये जो पूरी की पूरी दाग–धब्बों से छींटमछींट हो। फिर वही प्रयोग करें। अर्थात् लाल अथवा नीली स्याही के छींटे छिड़क दें। आप देखेंगे कि आपको इस चादर में कुछ भी अन्तर नजर नहीं आया। ऐसा क्यों ? ऐसा इसलिए हुआ कि जिस चादर में कम दाग थे तो नये दाग लगने पर गन्दगी की अधिकता अधिक स्पष्ट दृष्टिगोचर हुई। इधर दूसरी चादर में जगह ही नहीं थी सफेद रंग की। अतः नये पड़े दाग अन्य दागों के ऊपर चढ़ते रहे और चादर में कोई नयी बात नजर नहीं आयी।

ठीक इसी प्रकार सात्विक आहार जो नेक कमाई का हो उसे ग्रहण करते हुए योग साधना में तत्पर रहकर, इन्द्रिय संयम करते हुए श्रद्धा के साथ जो व्यक्ति अपने मन को निर्मल बनाता चला जाता है, उसके मन में एकाग्रता छाती चली जाती है। उसका मन सफेद चादर की तरह चमकता चला जाता है। ऐसी स्थिति में यदि वह विपरीत भाव प्रदान करने वाला, कुसंस्कारी आहार यदि एक बार भी ग्रहण कर लेता है तो उसे उसका प्रभाव दृश्य सहित स्पष्ट पता चल जाता है। और जिनके मनों पर पहले ही कुसंस्कारों (वासनाओं, स्वार्थ, परदोष, राग–द्वेष) का जाल सा बना रहता है, उन्हें इस प्रकार का अन्न (कुसंस्कारी आहार) खाने पर भी कोई नयी बात नजर नहीं आती क्योंकि नजर आने वाली नयी बात उनकी अपनी प्रवृत्ति में पहले से ही शामिल है। हाँ इतना अवश्य है कि कुसंस्कारों का घेरा अर्थात् दुष्प्रकृति और पक्की होती चली जाती है।

यही कारण है कि नानक जी के स्वागत में लाये गये एक सेठ के पूरी–पकवान व किसान

की रोटी में से नानक जी ने किसान की दी गयी सादी रोटी ग्रहण करना अच्छा समझा। जब सेठजी इस बात को अपना अपमान समझने लगे तथा अन्य उपस्थित जन समुदाय भी नानक जी के इस कृत्य पर विस्मित सा होकर बुरी बात समझने लगे। तो लोगों के प्रश्न का उत्तर देने के लिए नानक जी ने एक हाथ में किसान की रोटी व दूसरे हाथ में सेठजी की पूड़ी को उठाया और निचौड़ा किसान की रोटी से दूध की धारा व सेठजी की पूड़ी से खून की धारा बह निकली। उपस्थितगण जब इस भेद को नहीं समझ सके तो नानक जी ने समझाया कि किसान सात्विक हृदय प्रधान है, इसने खून–पसीना एक करके कमाया है। अतः इसकी रोटी से दूध निकला। परन्तु सेठजी की कमाई दूषित है। लोगों का खून चूस–चूसकर कमाये धन (किसी को सताकर, दबाव देकर पैसा ऐंठना, अधिक ब्याज पर राशि देकर गरीबी का फायदा उठाना, पैसा लेकर किसी का कार्य करना, यह सब खून चूसने के समान है) की पूरी से खून निकला। इसलिए मैंने किसान की रोटी ही स्वीकार की।

एक सन्त जी को राजा बहुत ही आग्रह के साथ अपने महल में ले आया। बड़े आदर–सम्मान के साथ सन्त को भोजन कराया गया। शाम को सन्तजी संध्या (भजन–साधना) करने से पूर्व जब स्नानागार में गये तो वहाँ रानी का हार खूँटी पर टंगा था। सन्त जी ने चुपचाप हार अपनी जेब में रख लिया। रात को राजा अपने रथ में बैठाकर सन्त को उनकी कुटिया पर छोड़ आया। सन्त जी को अगले दिन दस्त लग गये। दो दिन बाद उन्हें बहुत पश्चाताप हुआ कि अरे ये मैंने क्या किया ? चोरी जैसा घोर अपराध ? छिः–छिः, धिक्कार है मेरे साधू चोले पर। सन्त जी ध्यान में बैठे और मन पर चोरी के भाव क्यों पड़े, इस रहस्य को जानकर अगले दिन प्रातः सन्ध्या–वन्दन करके राज–दरबार में प्रवेश किया राजा ने बहुत स्वागत किया और आने का कारण पूछा कि आपकी क्या सेवा की जाये। सन्त जी ने कहा कि हे राजन एक चोर को जो दण्ड मिलना चाहिये वह दण्ड पाने आपके समक्ष प्रस्तुत हुआ हूँ। यह लो अपना हीरों का हार जो मैंने आपके स्नानागार से चुराया था। राजा ने पूछा–महाराज जब चुरा ही लिया था तो देने क्यों आये ? आप इसे रख लीजिये, मैं आपकी सज्जनता से प्रसन्न हूँ कि आपने अपना दोष स्वीकार कर लिया है। मैं आपको और भी हीरे जवाहरात देता हूँ। परन्तु हे महात्मन ! मेरे मन में एक प्रश्न है कि चोरी करने का भाव आपके मन में क्यों आया ? आप मुझे इशारा करते, मैं अपार सम्पत्ति आपके चरणों पर न्यौछावर कर देता। सन्त ने कहा कि हे राजन ! यह सब आपके द्वारा प्रदान किये गये अन्न को ग्रहण करने का प्रभाव है। आपने आहार में जो चावल बनाये थे, वह चोरी का माल था। कुछ चोर चावलों की बोरी चुराकर जा रहे थे। पकड़े जाने के भय से किसी गुप्त स्थान पर छिपाकर स्वयं किसी दूसरे स्थान पर जाकर छुपे रहे। आपके अनुचर भ्रमण करते हुए उस सामग्री को यह जाने बिना कि 'यह माल किसका है ?' उठाकर आपके भण्डार गृह में ले आये। आपने भी चावल के वास्तविक मालिक

की खोज न करके उस अन्न को जमा कर लिया। इस प्रकार यह कई चोरियों से गुजरता हुआ अन्न जब मेरे पेट में गया तो मेरे अन्दर भी चोरी के भाव पैदा हो गये और मैंने यह अधर्म कर ही डाला। दो-दिन तक दस्त लगने के कारण आपके अन्न का दुष्प्रभाव मेरे रस-रक्त से निकल गया तो मुझे अपने कुकृत्य का अहसास हुआ। अतः मैं चोरी स्वीकार करके चोरी का माल आपको लौटाकर दण्ड पाने आया हूँ। राजा सन्त जी के चरणों में गिर गये, "महाराज आप चोर नहीं, चोर तो मैं हूँ जो हर माल की जाँच-पड़ताल किये बिना उसे ग्रहण करता हूँ और दूसरों को भी इस पाप में शामिल करता हूँ।

इस उदाहरण से भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि साधक मन को सुरक्षित रखने के लिए यह अति आवश्यक है कि नेक कमाई का शुद्ध सात्विक आहार ही ग्रहण किया जाये अन्यथा गाड़ी तेज रफ्तार की नहीं रह जायेगी। गाड़ी का इंजन जितना दुरुस्त होगा, उसकी गति भी उतनी ही दुरुस्त होगी। अतः बाहर के अन्न से बचें। ऋषिकेश में एक साधक साधना में तत्पर रहते थे, उन्हें दिव्य अनुभव होते रहते थे। परन्तु एक बार वे किसी व्यक्ति के कहने में आकर भ्रमण करने हरिद्वार चले आये और वहाँ किसी के द्वारा भण्डारा आयोजित किया गया था, उस भण्डारे का अन्न ग्रहण कर लिया ! अन्न ग्रहण करने के बाद इनकी ध्यान-स्थिति गिर गयी और एक लड़की शादी के चोले में दिखायी देने लगी। जब अपनी गिरी हुई मनोदशा के विषय में इन्होंने श्री प्रभुजी से पूछा तो बताया गया कि जो भण्डारा तुमने ग्रहण किया है, पता करो किसने व किस उपलक्ष्य में दिया था। पता किया गया कि एक व्यक्ति ने अपनी कन्या किसी बूढ़े को बेच दी है, उन पैसों में अपराध निवृत्ति के लिए दान के रूप में यह भण्डारा दिया गया था। कहने का अभिप्राय मात्र एक कि हर जगह का भण्डारा भी ग्रहण नहीं करना चाहिये। कुछ लोग एक तराजू में पाप चढ़ाते हैं दूसरी में (दूसरे पलड़े में) पुण्य। जो पुण्य चढ़ाते है, वह भी पाप की दौलत से अर्जित और तराजू के दोनों पलड़े समान करने की इस युक्ति में भगवान की आँखों में धूल झोंकने का काम करते हैं। ईश्वर पाप का फल व पुण्य का फल अलग-अलग प्रदान करता है। और इतना सूक्ष्म निरीक्षण करता है कि जिस पुण्य को यह अज्ञानी पुण्य समझ रहा है वह कितने अंश में पुण्य है तथा कितने अंश में पाप। तभी फल का विधान करता है। श्री प्रभुजी के दरबार में एक दरोगा मिठाई का डिब्बा लेकर आया। प्रभुजी ने उस मिठाई को बाँटने से मना कर दिया। परन्तु कुछ समय बाद किसी भाई ने वह मिठाई बाँट दी, उसे प्रभुजी के आदेश (यह मिठाई नहीं बाँटनी है) के विषय में मालूम नहीं था। परिणाम निकला कि वहाँ पर निर्वासित जो साधकगण योग की ऊँची स्थिति में थे, उनकी साधना में विक्षेप आ गया। श्री महाप्रभुजी से इस विषय में पूछा गया तो उन्होंने बताया कि हमने उस मिठाई को बाँटने से इन्कार किया था। परन्तु होतव्या होकर ही रहती है। खैर ! अब तुम सबके मनों पर इस मिठाई का प्रभाव तीन दिन तक बराबर बना रहेगा। यह दरोगा कोई अधर्म का कार्य करके यहाँ आया

था। उन पैसों की यह मिठाई थी। अब तीन दिन इसका प्रभाव चलेगा फिर धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा। इस उदाहरण से भी यही बात स्पष्ट हुई कि हमें "अन्न" के विषय में बहुत ही सतर्क होकर कार्य करना है।

देने वाला बड़े प्यार से ही देता है, लेकिन क्या देता है, किस वृत्ति का है, यह बात अध्ययन कर लेना चाहिये।

कुछ लोग खिलाने-पिलाने में इतने पक्के है कि वस्तु उठाई, भगवान को भोग लगाई और पेश कर दी कि लो अब खा लो, अब तो भोग (प्रसाद) बन गयी। जरा ऊपर दिये उदाहरण को ध्यान से तो पढ़ो कि श्री महाप्रभु जी कालों के भी काल महाकाल, पूर्ण सिद्ध, परात्पर पर ब्रह्म हैं। उनके चरण-कमलों में भेंट की गयी हर वस्तु पवित्र होती है। परन्तु कौन सी वस्तु पवित्र रही, जो शुद्ध भाव से शुद्ध कमाई की थी। दरोगा की कमाई शुद्ध नही थी, इसलिए श्री प्रभुजी ने मन से स्वीकार नहीं की अतः चरण-कमल में भेंट करने के बाद भी श्री प्रभु जी ने उसे वितरित करने से इन्कार कर दिया। अतः सावधान ! यदि परम-पिता हर किसी का कुभाव, कुविचार व कुदृष्टि स्वीकार करने लगे तो अनाचार हो जायेगा। भगवान केवल निष्ठा, श्रद्धा, प्रेम, निर्मलता, सरल मन, सुन्दर भाव ग्रहण करते हैं और वह सब उस वस्तु में संचित न हो, जो भेंट की गयी तो प्रभु स्वीकार नही करते। भगवान के पास कुछ कमी है जो तुम्हारी उल्टी सीधी वस्तु भी ले लेगा। क्या कमी है परमात्मा को इस जगत में, जो तुम्हारी पाप की भरी वस्तु भी देने से खा लेगा। वह तो केवल भाव ग्रहण करते हैं अन्यथा तू दे भी क्या सकता है ? जो कुछ भी दृष्टिगोचर है, सब परमात्मा का पैदा किया हुआ है। अतः भेंट करना है, तो सात्विक भाव, सात्विक कमाई, सात्विक प्रसाद। तर्क करने वाले तर्क करते हैं, भगवान ने शबरी के झूठे बेर खाये थे और तुम शुद्धता व सात्विकता में ही अटके पड़े हो। अरे भाई ! उस शबरी के झूठे बेर में क्या था ? मालूम है-

शबरी के बेर, प्रेम टके सेर। (योगेशानन्द जी)

शबरी के बेर नश्वर धातु (रुपये-पैसे) में नहीं मिलते, इसके लिए प्रेम की कमाई चाहिये। जानते हो उन बेरों में कितने अर्से (समय) का प्यार छुपा था। उन बेरों का भगवान का एक दिन प्रसाद बन जाये, इस प्रसाद की तैयारी में शबरी कब से तपस्या रत थी। कहा जाता है कि नब्बे (Ninety Years) वर्ष तक शबरी ने भगवान श्री राम का इन्तजार किया। शबरी के गुरु श्री मातंग जी जब इस नश्वर देह का परित्याग करके इस संसार से जाने लगे तो शबरी को वचन दे गये थे कि "शबरी ! समय आयेगा और अवश्य आयेगा, भगवान श्री राम अपने अनुज लक्ष्मण के साथ स्वयं तेरे द्वार पर आयेंगे।" अब देखिये शबरी की "गुरु निष्ठा"। अपने गुरुदेव के वचनों पर दृढ़ रहकर अपनी साधना को प्रेम में पगाती रही। शंका नहीं की कि गुरुजी कह गये थे परन्तु बात सत्य नही निकली। गुरुदेव के वचनों में दृढ़ आस्था थी कि कह गये हैं तो एक न एक

दिन अवश्य आयेंगे। समय के अन्तराल ने भी शबरी की परीक्षा ली परन्तु गुरु वचनों में विश्वास बनाये रखा कि भले ही जीवन के अन्तिम श्वास के समय आयें परन्तु आयेंगे अवश्य मेरे प्रभु राम। इसलिए परम गुरु भक्त शबरी ने अपनी भक्ति को गुरु वचनों में निष्ठा व ईश्वर प्रेम से नित्य प्रति सींचा। एक दिन भी आलस्य नहीं किया कि कल पुष्प तोड़ लूंगी, कल बेर तोड़ लूंगी। आज तो थक गयी हूँ, जरा सा आराम कर लूँ आदि–आदि। रोज एक नयी किरण, नया विश्वास, नयी प्रतिज्ञा, नित नयी श्रद्धा, सब कुछ मँजा–मँजा था हृदय रूपी श्रद्धा का पात्र, कुछ भी मैला व पुराना न होने दिया। जैसे आज ही भक्ति जाग्रत हुई हो, जैसे आज ही पहली बार बेर तोड़ने चली हो, जैसे आज ही राह में पुष्प बिछाने चली हो। अंगुलियों पर दिन नहीं गिने कि दो दिन हो गये, चार मास हो गये, चालीस साल हो गये, अब तो बुढ़ापा आ गया, मेरा गुरु भी झूठा, ईश्वर भी झूठा, इतने दिन हो गये,इन्तजार करते–करते, कहीं कोई भगवान नहीं है आदि–आदि। आजकल के साधक तो तपस्या में पाँच साल का नाम सुनते ही घबरा जायेंगे नब्बे वर्ष की दीर्घकालीन अवधि में शबरी का शरीर जर्जर हो गया था। आँखें प्रभु भक्ति में अर्ध मिलिन्द सी रहने लगी थीं। केश खुले रहते थे। बालों को गूँथने का समय कहाँ था शबरी के पास। हर श्वास प्रभु श्री राम के चरणों में और गुरु वचनों में निष्ठा के लिए अर्पित। जरा सी आहट पर तुरन्त आँखें ऊपर उठाती कि प्रभु राम आ गये। अपनी भूख–प्यास का भान नहीं, थकान नहीं, रोज पुष्प तोड़कर राह में बिछाती। लोग पागल समझने लगे थे शबरी को। ऐसी प्रेम की सुगन्ध में पगी भिलनी की नस–नस योगाग्नि से परिपूर्ण थी। शबरी श्री राम से अपनी आत्मा का योग कराने की धुन में पूर्ण योग–योगिनी बन चुकी थी। नवधा भक्ति के सारे अंगों का पूर्णरूपेण पालन किया था शबरी ने। तभी तो श्री राम ने शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश करते हुए कहा कि शबरी ! नौ प्रकार की भक्ति में से एक प्रकार की भक्ति भी यदि मनुष्य कर लेता है तो मैं उसका उद्धार कर देता हूँ, परन्तु तुमने तो सभी प्रकार की भक्ति को बड़ी सुघड़ता से निभाया है–

नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई, नारि पुरुष सचराचर कोई।
सोई अतिशय प्रिय भामिनि मोरें, सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें।।

अतः कुतर्की लोगों की चाल में फँसाकर अपना मन न डिगायें। साधना करनी है तो स्वयं की अंगुलियों की मेहनत की कमाई पेट में पचायें। इधर–उधर भोजन करने की लत छोड़ें। सन्त रविदास व शबरी का उदाहरण देकर तुम्हें कुछ खाने पर मजबूर किया जाये तो भी मन न डिगाओ क्योंकि आजकल सन्त रविदास की चमड़े की कठौती में गंगा तथा शबरी के झूठे बेर श्री राम ने खा लिये, इन बातों में उलझाकर मिलाने वाले नहीं जानते कि सन्त रविदास योग की परम पराकाष्ठा को पहुँचे सन्त तथा शबरी जी परम योगिनी थी। सच्चा प्रेमी तुम्हें तुम्हारे नियम से डिगायेगा ही नहीं। अगर तुम झुकते हो तो तुम्हारे संकल्प के बल में दुर्बलता है। चारों

तरफ से कसना पड़ता है। अपनी साधना रूपी चादर को। अतः सावधान ! अन्न के विषय में कोई समझौता नहीं करना। 'महात्मा आनन्द स्वामी' का नाम सभी ने सुना है। उनको पुत्र को जब धोखे से जेल हुई तो महात्मा आनन्द स्वामी अपने बेटे को श्रीमत भागवत् सुनाने जाया करते थे जेल में। जब पुत्र ने अपनी मनोव्यथा पिता को सुनाई कि मैं छाती पर चढ़कर उन्हें खंजर भौंक रहा हूँ। पिता समझ गये कि किसी प्रकार के दूषित अन्न का संस्कार मेरे पुत्र पर पड़ गया है। उन्होंने पूरी जाँच–पड़ताल के बाद उस व्यक्ति को खोज निकाला, जिसने अपनी माता के साथ यह कुकृत्य किया था। वह रसोइया का वेश धारण करके जेल की रसोई में भोजन तैयार किया करता था। उसने स्वामी जी को सब सत्य–सत्य बतला दिया था। अतः केवल कमाई का ही नहीं, अन्न को अपने हाथों से पकाने वाले का प्रभाव भी पकाये अन्न में आ जाता है। हमारे हाथों की अंगुलियों से तेजस धारायें हर समय निकला करती हैं। जैसे व्यक्ति के संस्कार होते हैं, वैसे ही ये धारायें होती हैं और उन हाथों की पकायी रोटी सब्जी में उनका संस्कार खिंचा चला आता है। अतः साधक को अन्न पकाने वाले के विषय में भी सावधान रहना चाहिये। जेल में और व्यक्ति भी तो उस रसोइये के हाथ का बना खा रहे होंगे परन्तु स्वामी जी के बेटे पर ही उसके संस्कारों का प्रभाव क्यों दिखाई दिया ? ऐसा इसी विज्ञान पर आधारित हुआ कि अन्य सभी हत्यारे, लुटेरे, खूनी, डाकू आदि थे जेल में। स्वामी जी के पुत्र सात्विक बुद्धि वाले थे। निर्मल चित्त था उनका। धोखे से जेल काटनी पड़ी। दण्ड के अधिकारी नहीं थे। सफेद धुली चादर जैसे मन पर रसोइया के संस्कार स्पष्ट दिखाई दे गये। और अपराधियों के चित्त में तो था ही ये सब। अतः कहाँ–कहाँ खोज (अनुसन्धान) करोगे कि यहाँ भोजन करना है तो पहले भोजन के प्रदाता तथा भोजन के पकाने वाले की जाँच करूँ। व्यर्थ समय गँवाने से क्या लाभ ? शास्त्रों पर दृढ़ विश्वास करके साधना में मन लगाइये और दूषित अन्न तथा दूषित मन वालों से बचें।

बेवकूफ के लिए साथियों, पढ़ना भी नाकाफी है।
समझदार के लिए साथियों, काफी एक इशारा है।।
इस दुनिया में किस्मत का रोना, वे ही रोया करते हैं।
मेहनत और मशक्कत करना, जिनको नहीं गंवारा है।।
कल बुलबुल ने एक फूल को, बड़े प्यार से समझाया।
देखो जरा संभल कर रहना, हवा बड़ी आवारा है।।

(श्री विजय निर्बाधजी)

जमाना तीव्र गति से चकाचौंध में आगे बढ़ रहा है, आपको साधना में आगे बढ़ना है। अतः बुलबुल ने जैसे फूल को 'आवारा हवा' के विषय में सचेत कर दिया, उसी प्रकार हम सब योग–साधकों को जग वालों के दूषित अन्न व दूषित मन के विषय में सचेत होना है।

(क्रमशः)

ग्रीष्म कालीन योग शिविर

डॉ० सुरेन्द्र कुमार शर्मा

सिद्धों की साधना स्थली, साधकों की आराधना भूमि, जिस पर अनवरत कृपा दृष्टि बरसाती रहती है–प्रभुवर रामलालजी महाराज तथा योगेश्वर चन्द्रमोहन महाराज जी की। ऐसी पावन साधना स्थली का नाम है–श्री सदाशिव मन्दिर सिद्ध योगाश्रम काँगड़ा। यहीं पर प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी योग शिविर का आयोजन किया गया। २५ जून २००३ से ३० जून २००३ तक। इसमें अनेक नगरों और प्रान्तों के अनेक प्रभु प्रेमी साधक पधारे। सभी के मन में थी एक ललक, जिज्ञासा और सद्गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव। बच्चे, युवा, वृद्ध तथा महिलावर्ग सभी अनुशासन और मर्यादा की डोर से बंधे हुए। छोटों से लेकर बड़ों तक सभी धोती पहने हुए। किसी प्राचीन गुरुकुल की अवधारणा प्रतीत होती थी। कोई भागादौड़ी, शोरगुल या आपाधापी नहीं। सर्वत्र एक ही भाव संचरित हो रहा था–मौन अनुशासन, ज्ञान की पिपासा तथा आत्मोन्नति की प्रबल भावना।

कार्यक्रम का शुभारम्भ होता था–प्रातः ५.३० बजे से सद्गुरु वन्दना के उपरान्त योग प्रशिक्षण, गीता पाठ और फिर आध्यात्मिक प्रवचन। सायंकाल ५.०० बजे सामूहिक भजन–कीर्तन के उपरान्त फिर रात्रि ६.५० बजे तक सभी साधक पिपासु डुबकी लगाते थे– अध्यात्म गंगा में।

काँगड़ा वासियों के पुण्य फल का ही परिणाम था कि श्रद्धेय आचार्य चन्द्रहास जी उनके मध्य विराजमान थे। जीवन की गुत्थियों को सुलझाने के लिए। साधना स्थली काँगड़ा पर उनकी विशेष कृपा दृष्टि रही है। इस पावन स्थाली पर चरण रखते ही उनके भाव–मुक्ताओं की मूल्यवान पोटली स्वतः ही खुल जाती है। इस वर्ष भी हमें गुरुवर के कृपापात्र अनन्य गुरुभक्त भुवनेन्द्र झा जी का असीम स्नेह और आशीर्वाद मिला। उनकी मृदुल मुस्कान से सभी चिन्तायें दूर हो जाती हैं। जब वे प्रातः काल गीता पाठ करते थे तो जन मानस आनन्द की तरंगों में हिलोरे मारने लगता था। सायंकाल वे गुरुभक्ति गंगा में स्नान कराकर सभी साधकों के तन–मन को शान्त एवं पुनीत बना देते थे। ध्यान समाधि की सहज स्थिति साधकों की बनी रहती थी। इस आयोजन की मुख्य धुरी थे–अत्यन्त विनम्र, कर्तव्य परायण, प्रभु जी के परम प्रेमी श्री विजय पुरी जी। उनकी सेवा ही उनकी साधना के रूप में प्रतिफलित हो रही थी।

हाँ, तो अब चर्चा करते हैं–उस अध्यात्म गंगा की, जिसमें पुण्य स्नान करके अनेक साधकों का जीवन सार्थक हो गया। यह परम पावनी प्रवचन गंगा निःसृत हुई परम पूज्य आचार्य चन्द्रहास जी के श्री मुख से। अनवरत, आत्मा की प्यास बुझाने वाली, समय–सीमा को तोड़कर, भक्ति कणों से आप्लावित प्रवचन धारा। कोई भी गूढ़ विषय वस्तु हो, आचार्य जी की पांडित्य मयी वाणी उसके प्रत्येक रूप को निराकार से साकार कर देती थी। श्री सद्गुरु की कृपा और

महिमा का वर्णन करते हुए उनके नेत्र छलछला उठते थे। आत्मा–परमात्मा के स्वरूप को प्रकट करते हुए ऋषियों के समान उनका दिव्य मुख मण्डल दमकने लगता था। जीव, प्रकृति, माया, मोक्ष, गुरु–शिष्य सम्बन्ध, प्रेम, भक्ति आदि सभी विषय उनकी वाणी का आश्रय पाकर अपने रहस्य की पर्तों को स्वयं खोलने लगते थे। विद्वता, अनुभूति और पांडित्य के भार से दबे हुए परन्तु नम्रता सहजता और पर दुःख कातरता के कारण पराग कणों से भी हलके ऐसे तत्वदर्शी आचार्य प्रवर को नमन करने के लिए सभी साधकों के मस्तक झुक जाते थे और तब तक झुके ही रहेंगे जब तक पूज्य आचार्य जी शीतकालीन योग शिविर में दर्शन देकर अपने हस्त–कमलों से उनकी पीठ को थपथपा नहीं देते।

❊ ❊ ❊

'विचार'

विचारों द्वारा मनुष्य के शरीर में 'स्वास्थ्य' और रोग' दोनों ही का संचार किया जा सकता है। 'विचार' मुख को उत्पन्न और नाश कर सकता है। वह मुखमण्डल को सहसा पीला कर देता है, मुँह और होठों को सुखा देता है; और यही विचार मुख–मण्डल को प्रफुल्लित, रक्त की गति को तीव्र और शरीर पर कान्ति प्रदान करता है। यही देह को कँपाते हुए नेत्रों से आँसुओं का प्रवाह जारी कर देता है, मन की गति इसी के द्वारा शिथिल और तीक्ष्ण हो जाती है। यही मनुष्य को आनन्दमय बना देता है और यही मनुष्य को निराशा की चिरकाल खोह में ढकेल देता है, इसी के अकस्मात् प्राप्त आनन्द को न पचाकर मनुष्य फूलकर मर जाता है; और कभी भय के कारण लहू सूख जाने अथवा मन की गति रुक जाने तथा भय, शोक और असह्य दुःख के कारण तुरन्त और अकस्मात् मृत्यु हो जाती है, अर्थात् जहाँ यह मनुष्य को मृत्यु के मुख में तुरन्त ढकेल सकता है वहाँ वही उसे स्वास्थ्य, आनन्द और सुख प्रदान कर सकता है।

वस्तुतः हमारी दुनिया वह नही है जिसको हम मानते हैं, प्रत्युत वह है जिसका हम विचार करते हैं। मनुष्य विचारों का एक पुतला है। जैसे इसके विचार होते हैं वैसा ही वह बन जाता है। इसलिये यदि हम रोग के विचार को एक समय तक निरन्तर बनाये रखेंगे तो निराश होना पड़ेगा, रोग अपना स्वरूप अवश्य दिखलायेगा, अर्थात् जैसा विचार करेंगे वैसा ही हो जायेगा।

अतः प्रतिदिन प्रतिक्षण मनुष्य को चाहिये कि वह निराश न हो, वरं सदैव आशाजनक प्रसन्नता, स्वास्थ्य और सफलता के विचारों को मन में धारण करे।

सद्‌गुरु अवज्ञा के फलस्वरूप प्राप्त भारी कष्ट के दौरान

दुष्टात्मा सद्‌गुरु प्राप्ति का कारण बनी—२

लेखक—राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

गतांक से आगे—

दुर्भाग्यवश जब भाई श्री श्यामलालजी पूज्य श्री गुरुदेव जी द्वारा बतलाई गई सामिग्री को शनिवार तक नहीं निकाल सके तो उनकी हालत तुरन्त ही पहले जैसी हो गई। इसमें घरवालों की विशेष लापरवाही थी। श्याम के घर वाले दूसरे ही दिन श्याम को लेकर सिरसा आश्रम पहुँचे। पूज्य गुरुदेवजी के स्वरूपों के सम्मुख खड़े होकर अपनी गलती के लिए क्षमा याचना की और श्याम के कष्ट निवारण के लिए उन्होंने काफी निवेदन किया। मा० हुकुमचन्द जी से प्रसाद लेकर श्याम को खिलवाया तथा भाभीजी ने भी अपने हाथ का प्रसाद दिया लेकिन इस बार श्याम की हालत में कोई लाभ नहीं पहुँचा। भाभीजी ने काफी तसल्ली देते हुये कहा—श्याम भइया ! अब गलती तो हम सभी लोगों से बन ही गई है किन्तु एक बात याद रखना तुमको अन्ततः पूर्ण लाभ पूज्य श्री गुरुदेव जी की कृपा से ही होगा। ऐसी छोटे-छोटी लीलायें तो वो अपने भक्तों के कल्याणार्थ करते ही रहते हैं। अतः उनके प्रति अपनी दृढ़ श्रद्धा भक्ति बनाये रखना। निराश मन होकर श्याम अपने घर लौट आये।

श्याम भाईजी की हालत दिनप्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। गाँव वालों ने श्याम जी के घरवालों को सलाह दी कि श्याम को शीघ्र ही किसी अच्छे तांत्रिक को दिखलाना चाहिए। श्यामजी को अचानक प्राणघातक अटैक पड़ने लगे थे।

धीरे-धीरे श्यामजी की भाभीजी ने ध्यान की स्थिति में श्याम के विषय में अनेक बातों का पता कर लिया था। टोने में तन्त्र द्वारा जिस चीज की प्रतिष्ठा की गई थी उस वस्तु ने श्याम को पूर्णरूप से घेर लिया था।

गाँव की एक महिला को औलाद नहीं होती थी। उसने एक तांत्रिक से मिलकर गाँव के चौराहे पर टोना कर दिया था। इस टोने का उद्देश्य था कि जो पहला व्यक्ति इस टोने से गुजर जायेगा उसकी आँखों से आँसू बहने लगेगा और सात दिन बाद उसकी मृत्यु हो जायेगी तब उस महिला को औलाद प्राप्त हो जायेगी।

दुर्भाग्य से श्यामजी ही सबसे पहले उस टोने के ऊपर से गुजर गये। उनकी आँखों से पानी बहने लगा। टोने में केवल सात दिन का समय निर्धारित था। टोने के नियमानुसार सात दिन के बाद श्यामलालजी की मृत्यु हो जानी चाहिए थी किन्तु पूज्य श्री गुरुदेवजी की कृपा से उनके प्राणों की रक्षा हो रही थी। गुरुदेव स्वयं अपने मुखारविन्द से कहा करते थे—

"हमारे जो बच्चे गुरुदेव की आज्ञा का पालन नहीं करते, न आसन करते न ध्यानाभ्यास करते, कभी मंत्रजाप नहीं करते किन्तु गुरुदेव से अत्यन्त प्रेम करते हैं उन्हें गुरु की प्रसन्नता से मिलने वाली कृपा तो नहीं मिल सकती फिर भी उनके प्रेम के कारण गुरुदेव हर समय उनके

रक्षक रहा करते हैं। देखो ! ऐसे हमारे बच्चों के जीवन में हजार आपत्तियाँ आती हुई भले ही दिखें किन्तु कोई भी दूसरी ताकत हमारे बच्चों का बालबांका नहीं कर सकती। किन्तु यदि ये लोग थोड़ा बहुत भी मंत्रजाप आदि करने का अभ्यास बना लें तो गुरु की प्रसन्नता से उन्हें कष्ट से अति शीघ्र सफलता मिल सकती है।

भाई श्यामजी ने स्वयं बताया—

"ऐसे टोने हमारे गाँव में पहले भी हो चुके थे। टोनों की चपेट में आने वाले लोग बेचारे सात दिन तक बेहोश पड़े रहे। लोगों ने रामायण के पाठ कराये, सत्संग कराये किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। अन्ततः उन्हें अपने प्राणों से हाथ धोना ही पड़ा। इन बेचारों पर किसी महापुरुष की कृपा नहीं थी। मेरे माता–पिता को संतोष था क्योंकि जिस दिन से हम लोग श्री गुरु भगवान की शरण में पहुँचे उनकी कृपा से मेरे प्राणों की रक्षा निरन्तर हो रही थी।"

कुछ गाँव वालों ने, मिल कर एक दिन एक स्याने (तांत्रिक) को बुलवाया वह दूसरे दिन सुबह चार बजे श्याम के घर पर आ पहुँचा। वह भैरों का भक्त था। उसने घर के एक स्थान पर अपनी पूजा की सामिग्री फैला कर तमाम प्रपंच किया और काफी देर तक मंत्र पढ़ता रहा। जमीन पर एक गोला चक्कर बना कर उसमें श्यामजी को बिठा दिया। वह बाल पकड़कर श्याम से पूछने लगा बता कौन है ? कहाँ से आया है ? श्याम ने कहा—अरे भाई ! मैं तो वही श्यामलाल हूँ। यहीं अपने घर वालों के साथ रहता हूँ। तब उसने श्याम को छोड़ दिया। श्याम को तान्त्रिकों का प्रपंच पसन्द नहीं था। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि मैं ठीक हो जाऊँगा तो गुरुदेव के द्वारा ही और किसी की ताकत नहीं कि मुझे ठीक कर दे। किन्तु घर वालों के आगे विवश हो जाते थे। वह तान्त्रिक घरवालों से कह गया कि अपने लड़के को किसी ताकतवर तांत्रिक को दिखाओ इसके ऊपर की हवा तो पकड़ाई में नहीं आती।

जो सिद्ध गुरुदेव होते हैं उन्हें अपने प्रत्येक शिष्य के ऊपर आने वाले क्लिष्टाक्लिष्ट कर्म संस्कार के भुगतान काल का ज्ञान बहुत समय पहले से ही हो जाता है। वे क्लिष्ट प्रारब्ध कर्म संस्कार के घोर कष्ट से अपने प्रत्येक बच्चे को बचाना चाहते हैं किन्तु मर्यादा के कारण स्वतन्त्रतापूर्वक वह ऐसा नहीं कर सकते। फिर भी अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए गुरुदेव अपने ऐसे शिष्य को किसी आज्ञा विशेष से बाँध कर उसके अन्दर गुरुभक्ति की यथार्थ स्थिति का अवलोकन करते हैं। गतांक में मैं यह सिद्धान्त विस्तार से स्पष्ट कर चुका हूँ जिसको गुरुदेव से विशुद्ध प्रेम है और विनयी है वह प्राणों पर खेलकर भी अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन करके गुरुदेव को प्रसन्न कर लेता है वह उनकी कृपा के परिणाम स्वरूप क्लिष्ट प्रारब्ध कर्म के घोर कष्ट से बच जाता है। उसका अतिशीघ्र सूक्ष्म में भुगतान हो जाता है। जो गुरु की अवज्ञा करने वाला साधारण मनुष्य है उसे अपने शरीर पर लम्बे समय तक क्लिष्ट प्रारब्ध कर्म का घोर कष्ट भोगना पड़ता है किन्तु गुरुदेव उसके प्राणों की हर समय रक्षा करते रहते हैं।

संक्षेप में क्लिष्ट प्रारब्ध कर्म संस्कार का भुगतान दो तरीकों से होता है—

(१) क्लिष्ट प्रारब्ध कर्म का स्थूल शरीर पर दीर्घकालीन भुगतान–

इसके अन्तर्गत क्लिष्ट प्रारब्ध का भुगतान कई वर्ष के लम्बे समय तक शरीर पर होता रहता है। गुरुदेव की अवज्ञा करने वाले संशयात्मा 'सामान्य मनुष्य' को अपने क्लिष्ट प्रारब्ध का घोर कष्ट बहुत लम्बे समय तक अपने शरीर पर भोगना पड़ता है।

(२) क्लिष्ट प्रारब्ध कर्म का सूक्ष्म में अतिशीघ्र भुगतान–

इसके अन्तर्गत गुरुदेव की प्रसन्नता के फलस्वरूप उनकी कृपा से क्लिष्ट प्रारब्ध कर्म संस्कार का भुगतान सूक्ष्म में अत्यल्प समय में हो जाता है। गुरुदेव के आज्ञाकारी अनन्य भक्त ही उनके अन्तःकरण को प्रसन्न करके उनकी कल्याण मूलक कृपाओं को प्राप्त करते हैं।

उक्त सिद्धान्त को गुरुदेव जी अपने शब्दों में यों व्यक्त करते हैं– "प्रारब्ध तो सभी को भोगना ही होता है। 'प्रारब्ध कर्मणाम भोगादेव क्षयः'–प्रारब्ध कर्म भुगतान से ही नष्ट होते हैं। यह दूसरी बात है कि हम अपने प्रारब्ध को कैसे भोग लेते हैं। स्थूल भुगतान में तो लम्बा समय लगता है। समय अधिक लगेगा तो कष्ट भी अधिक होगा। 'सामान्य मनुष्य' के भोग स्थूल शरीर पर ही आते हैं। यदि गुरुदेव की कृपा है उनका साया है तो सूक्ष्म शरीर में बहुत थोड़े में ही कर्मफल का भुगतान हो जाता है।" (गुरुदेव वचनामृत, प्रथम खण्ड, पृ०सं० २६)

मैंने एक विशिष्ट आध्यात्मिक प्रतिष्ठा से सम्पन्न महानुभाव को नये योग जिज्ञासुओं में यह कहते हुए सुना कि गुरुदेव की अवज्ञा होने पर वो अपने शिष्य को घोर कष्ट देते हैं। यह धारणा बहुत गलत है। कष्ट भोगी के अन्दर गुरुदेव की सौम्यता, सरलता, क्षमाशीलता दयालुता का भाव समाप्त हो जायेगा। गुरुदेव की अत्यन्त करुणामय मनमोहक सौम्य छवि का ही हर समय चिन्तन करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेव भगवान् कल्याण मूर्ति हैं हर प्रकार से अपने भक्त का कल्याण ही करते हैं। उनकी क्षणिक प्रताड़ना भी अच्छा ही फल प्रदान करती है। गुरुदेव अपने किसी भी बच्चे को स्वयं कष्ट नहीं देते। अपने प्रिय भक्तों को सताने वाली दुष्टात्माओं को ही वह दण्ड दिया करते हैं। गुरुदेव के हाथों कष्ट पाकर वह भी सद्गति को ही प्राप्त होते हैं। अपने ही दुष्टकर्मों का फल वो भोगते हैं और कष्ट उठाते हैं। उनकी अज्ञानता, उच्छृङ्खलता, असभ्यता और अभिमान ही उनकी दुर्गति के कारण होते हैं। गुरुदेव तो ऐसे लोगों को भी बार–बार क्षमा करके उन पर उपकार ही करते हैं उसके प्राणों की रक्षा करते रहते हैं। दुःख का कारण हमारे अन्दर विश्वास की कमी है।

हमारे ताऊ गुरुदेव ब्र० श्री हरीहरानन्द जी तो श्री महाप्रभुजी के अन्तहीन योग ऐश्वर्य से बिल्कुल परिचित नहीं थे। उनके अन्दर अत्यधिक क्रोध था किन्तु वे सन्तजनों के सेवक और सत्यवादी थे। महाप्रभुजी ने जो कुछ पूछा उन्होंने सत्य ही उत्तर दिया। खास बात यह हुई कि वह श्री महाप्रभुजी की आज्ञा पाकर उनके सन्तोष के लिए अपना सिर काटकर उनके चरणों में रखने के लिए तुरन्त तैयार हो गये। अजनबी सन्तों के प्रति भी उनके समर्पण का भाव देखकर

श्री महाप्रभुजी का अन्तःकरण इतनी प्रसन्नता से भर गया कि उन्होंने तत्काल उनको अजर-अमर का वरदान देकर समाधिस्थ कर दिया। यही है सिद्धयोग की महिमा। सिद्धयोग में विनयी गुरूदेव की कृपा से बिना श्रम के ही कितनी बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ पा जाता है। इसकी पूर्व कल्पना नहीं की जा सकती। श्री महाप्रभुजी व पूज्य गुरुदेव जी के जीवन लीला चरित्रों में ऐसी अनुपम घटनाएँ स्थान-स्थान प्राप्त होती हैं। केवल आज्ञा पालन के कारण स्वामी हरीहरानन्द जी को कितना अनुपम लाभ हुआ। तो सर्व प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि हम सभी लोग सतत् गुरुमंत्र जप से पहले अपने अन्तःकरण में सदाचार आदि अनेक दैवीय गुणों का विकास करें।

गाँव के एक सज्जन पुरुष ने श्याम के घरवालों को एक स्याने का पता दिया और काफी प्रशंसा की। श्याम जी के भाई साहब उससे मिलने गये उसने इलाज के वास्ते २००० रु. माँगे। भाई साहब राजी हो गये। घर पर आकर जब वह अपने माता-पिता को बता रहे थे कि नये स्याने ने श्याम को ठीक करने की फीस २००० रु. माँगी है तो तुरन्त श्याम के ऊपर निवास करने वाली प्रेतात्मा ने कहा मैं भी उसको दो हजार रु. दूँगा जो मुझे इसके शरीर से निकाल कर दिखायेगा। इतने दिनों के कष्ट भुगतान के बाद उस प्रेतात्मा ने श्याम के मुख से बोल कर दिखाया था, सभी भय से चिन्तित थे।

सवेरा होते ही दो व्यक्तियों को अपने साथ लेकर वह स्याना उनके घर पर पहुँच गया। उन्होंने एकान्त स्थान चुनकर घर में अपने इष्ट के लिए पूजा का स्थान बनाया, एक जोत लगाई दिन भर प्रेतात्मा के श्याम के ऊपर आने की प्रतीक्षा में रहे। ठीक शाम को पाँच बजे प्रेतात्मा ने आते ही श्याम पर अटैक किया। तीनों तांत्रिकों ने लगातार काफी देर तक मंत्रोच्चारण किया। प्रेतात्मा एक झटके में निकल गई ये लोग उसे अपने मंत्रों में बाँध नहीं सके।

श्याम ने बाद में पूज्य गुरुदेवजी का आरती पूजन किया और भोजन करके लेट गये। लेटते ही उस प्रेतात्मा ने श्याम को पुनः दबोच लिया। श्याम को चारपाई पर ही सिरहाने उल्टा लटका दिया सिर ऊपर पैर नीचे। तांत्रिक तीनों शराब पी रहे थे। घर के सभी लोग घबरा गये। वो तीनों आकर श्याम के सिरहाने खड़े होकर मंत्र पढ़ने लगे। प्रेतात्मा ने क्रोधित होकर श्याम के हाथ द्वारा एक जोर का थप्पड़ प्रधान स्याने के गाल पर जड़ दिया और क्रोध में लाल आँखें करते हुये कहा-

-चला जा यहाँ से बड़ा आया है मुझको निकालने वाला। यह कहते हुये वह श्याम के शरीर से जोत के निकट बैठ गया फिर बोला-

-अब मैं जा रहा हूँ कोई मुझे रोक नहीं सकता। तेरे में हिम्मत हो तो बुला लेना। मैं अपनी मर्जी से आता-जाता हूँ। तान्त्रिकों के पूछने पर श्याम ने उन्हें बताया कि रात को १२ बजे से पहले वह एक बार अवश्य चक्कर लगाता है। उस समय ११-४५ हो रहे थे। ठीक ११-५० पर वह पुनः आ गया और श्याम की देह पर सवार हो गया। आधी रात में भी वहाँ गाँव के १०-१२

लोग उपस्थित थे। तीनों ने पुनः मंत्र पढ़ना शुरू कर दिया उसने एक फूंक मार कर सारे मंत्र बेकार कर दिये। उन्होंने मंत्र पढ़ना बन्द कर दिया। वो लोग उठ गये और श्याम को भी उठा लिया।

लज्जित हुये तान्त्रिक ने प्रेतात्मा से कहा मेरे मंत्र पढ़े चाकू को आज तक कोई नहीं उखाड़ सका तू उखाड़ दे तो मैं जानूँ। प्रेतात्मा ने तुरन्त चाकू उखाड़ लिया और चाकू हाथ में लेकर मुख्य तांत्रिक की ओर बढ़ने लगा।

श्याम भाई जी स्वयं अपने शब्दों में बतलाते हैं–"मैं बड़ी कठिन परिस्थिति में पड़ गया। गुरु कृपा यदि न होती तो मेरा पूरा परिवार भारी संकट में पड़ सकता था। चाकू वास्तव में तो मेरे हाथ में ही था उस प्रेतात्मा का मेरे पूरे शरीर पर कन्ट्रोल रहता था। यदि वह तांत्रिक पर चाकू से प्रहार कर देता तो तांत्रिक तो मर जाता और हत्या का अपराध मुझे लगता। पुलिस मुझको घरवालों सहित पकड़ कर ले जाती। उसे भूत–प्रेतों के मामलों से क्या लेना–देना।

मैंने भयवश तीव्रतम् संवेग से पूज्य गुरुदेव जी का सुमिरन किया। क्षणिक देर के लिए मेरे अन्दर 'अनन्य भक्ति का प्रेममय चिन्तन बन गया। पूज्य गुरुदेव जी भी क्षणिक काल की कृपा के लिए अप्रत्यक्ष रूप से वहाँ आ गये। तांत्रिक बहुत डर गया उसे लगा आज निश्चित मृत्यु हो जायेगी। उसके हाथ से चाकू को छुड़ाना बहुत कठिन था वह किसी पर भी प्रहार कर सकता था। गुरु कृपा से वह तांत्रिक की ओर न बढ़कर पूजा के स्थान की ओर बढ़ने लगा। उसने दो बार पूजा की थाली पर चाकू से प्रहार किया। थाली में एक धूप की डिबिया रखी थी जिस पर गणेशजी की आकृति बनी थी। उसने जोर से थाली पर तीसरी बार चाकू से प्रहार किया। वह धूप की डिबिया उचट कर जोत के ऊपर जा गिरी और जोत की लौ पर ही पड़ी रही। मेरे हाथ से चाकू छूट गया और मैं बारह फीट पीछे दीवार से जा लगा। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने पूज्य गुरुदेव जी की इस लघु कृपा लीला का अनुभव किया। चाकू मेरे हाथ से छूटकर कहीं गुम हो गया कुछ पता न चला। मैं यही चाहता था कि किसी प्रकार चाकू प्रेतात्मा के हाथ से छूट जाये। मेरे गिरने के साथ ही प्रेतात्मा मेरे अन्दर से निकल गई उसका जाने का समय हो गया था। तांत्रिक तो यह देख कर श्री प्रभुजी के चरणों में नतमस्तक हो गया। बाद में धूप की डिबिया को जब जोत के ऊपर से उठाया तो सब दंग रह गये। उस पर बनी गणेश जी की आकृति को जोत की लौ ने कहीं भी स्पर्श नहीं किया शेष डिबिया जल गई थी। शायद इस आकृति में गणेश जी के माध्यम से गुरुदेव भगवान ही रक्षार्थ आये होंगे।

फिर मैंने तांत्रिकों से कहा अब आप लोग अपने घर लौट जायें। हमें अपनी जान से ज्यादा आपकी जान प्यारी है। हम सभी लोग उस दिन रात को एक बजे के बाद ही सो सके। इस लघु कृपा लीला को देखकर मेरा मन अपूर्ण शक्ति और आत्म विश्वास से भर गया। उनकी कृपा के लिए मेरा मन हमेशा आशान्वित रहने लगा। तीनों तान्त्रिक सबेरा होते ही चले गये। किन्तु जो मुख्य तान्त्रिक था वह जाते समय मेरे पिताजी से कह गया–हमने अपने जीवन में आज तक

ऐसा प्रेत नहीं देखा। ये तो बिल्कुल अलग प्रकार का ही प्रेत है। यह बहुत ताकतवर है कोई ताकतवाला ही तांत्रिक तलाश करो।

मैंने अपने इस लम्बे कष्ट के दौरान एक अनुभव किया। जब भी मेरे घरवाले मुझे किसी तांत्रिक को दिखाते थे तो मेरा कष्ट और लम्बा खिंच जाता था और पहले की अपेक्षा कष्ट भी बहुत अधिक बढ़ जाता था। कारण सर्व समर्थ गुरुदेव पर भरोसा करके जब हम अन्य तुच्छ शक्तियों पर भरोसा करते हैं तो फिर हमारी अपने गुरुदेव के प्रति अनन्य भक्ति नहीं रहती। रोज प्रेतात्मा मुझे बहुत बुरी तरह सताती थी। मैं दर्द के कारण पूरी शक्ति से चीखता था। सारा संसार मुझे दुःख का सागर लगता था। हर तरफ दुःख ही दुःख दिखलायी पड़ता था। संसार में मेरी कोई आसक्ति नहीं रह गई थी। मेरे घरवाले मेरे कष्ट के कारण बहुत दुःखी थे। वो मेरे लिए जो कष्ट उठा रहे थे उनका वह कष्ट मुझे अपने कष्ट से ज्यादा लगता था। कई महीने इसी प्रकार कष्ट सहते–सहते कट गये। मैं वैराग्य की ओर बढ़ रहा था। संसार में आसक्ति न रहने से धीरे-धीरे मेरा मन गुरुदेव के चिन्तन में रमने लगा था।"

'गुरुभक्ति' ही सर्व दुःखों से मुक्ति दिलाने का सर्वोत्कृष्ट साधन

हम गुरुदेव के शिष्य हैं। सभी गुरुभाई बहिनों के अन्दर न्यूनाधिक 'गुरुभक्ति' है। लेकिन ये भक्ति साधारण स्तर की है। ऐसी भक्ति से हमारा कोई विशेष लाभ नहीं होगा। जब तक हमारे अन्तःकरण में मीरा, तुलसी, नरसी मेहता जैसी 'अनन्य भक्ति' पैदा नहीं होती है तब तक हमारा योग मार्ग में सफल होना सम्भव नहीं है। 'अनन्य भक्ति' का अर्थ है भगवान का अनन्य चिंतन।

योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द्रजी से उद्धवजी ने पूछा–हे प्रभु ! चित्त में हर समय आपका चिन्तन बना रहे ऐसी स्थिति को प्राप्त करने का उपाय क्या है ? भगवान ने उत्तर दिया–हे उद्धव ! जब तक मनुष्य का मन विषय–चिन्तन में लगा रहेगा। वह मेरा सतत् चिन्तन नहीं कर सकेगा। जो संसार के आकर्षण के प्रति पूर्णतः अनासक्त हो जाता है उसमें मेरी भक्ति सहज ही प्रकट हो जाती है। जितना अधिक वह य मेरे रूप, गुणों, लीलाओं का चिंतन करेगा उतनी ही अधिक मेरी भक्ति को प्राप्त करेगा। श्री मद्भागवत के एकादश स्कन्ध में उक्त प्रसंग निम्न प्रकार से वर्णित है–श्री कृष्ण कहते हैं।

विषयान ध्यायतश्चित्त विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चित्त मय्येव प्रतिलीयते।।

अर्थात्–"हे उद्धव ! जो पुरुष निरन्तर विषय चिन्तन किया करता है उसका चित्त विषयों में फँस जाता है और जो मेरा स्मरण करता है, उसका मन मुझमें तल्लीन होता चला जाता है।

उद्धव जी ने भगवान से पुनः प्रश्न किया–

हे प्रभु ! आपको प्राप्त करने का सरल उपाय क्या है ? उन्होंने उत्तर दिया–हे उद्धव ! मैं केवल अनन्य भक्ति से पकड़ में आता हूँ जो मुझे प्राप्त करना चाहता हो वह मेरे अथवा

तत्वज्ञानी संतों के प्रति अपने हृदय में 'अनन्य भक्ति' पैदा करें। श्री मद् भागवत के निम्न श्लोक से यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है।

भक्त्याहमेकयाग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्।।

अर्थात्– "हे उद्धव जी! मैं सन्तों का प्रियतम आत्मा हूँ, मैं अनन्य श्रद्धा–भक्ति से ही पकड़ में आता हूँ मुझे प्राप्त करने का यही एक उपाय है।"

भगवान ने उक्त श्लोक में सन्तों के वास्तविक मूल्य को प्रकट किया है। भगवान कहते हैं कि संत मुझे अपना प्रियतम जानकर मुझसे प्रेम करते हैं। ऐसे कोई–कोई बिरले संत ही मुझे अपनी आत्मा में ही प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे संतों की कोई यदि सेवा भक्ति करता है, उनसे अनन्य प्रेम करता है तो समझो कि वह मेरी ही सेवा कर रहा है। यदि उसके अनन्य प्रेम से संत का हृदय प्रसन्नता से भर जाता है तो समझना चाहिए कि वह मेरी ही प्रसन्नता है। मैं सभी को साकार रूप में प्रत्यक्ष तो प्राप्त हो नहीं सकता। जिन संतों ने मुझे प्राप्त कर लिया है उनकी शरण लेकर उनकी कृपा स्वरूप मुझको प्राप्त किया जा सकता है।

हमारे पूज्य गुरुदेव से ज्यादा सामर्थ्यवान महान संत कहाँ प्राप्त हो सकते हैं। विधाता ने हमें परिपूर्ण सद्गुरू प्रदान किए जो हमारे योग विकास में कुछ भी करने को तत्पर रहते हैं। ऐसे गुरुदेव को पाना बड़े भाग्य वालों की [illegible]ल है। इसलिए यही उचित है कि समय रहते हम खूब गुरु भक्ति करें, उनसे अनन्य प्रेम करें। उनकी सभी आज्ञाओं का दृढ़ता से पालन करें। उनकी प्रसन्नता के द्वारा ही केवल ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। हम सभी गुरुदेव की 'अनन्य भक्ति' की अभिलाषा रखते हैं। किन्तु इसे प्राप्त करने से पहले 'अनन्य भक्ति' के स्वरूप को अवश्य समझ लेना चाहिए।

फिर किसी स्वार्थ पूर्ति के लिए किसी दूसरे गुरु की शरण में नहीं जाना चाहिए। अपने गुरुदेव के पूर्ण सामर्थ्यवान होते हुए भी राजसी–तामसी शक्तियों वाले अपवित्र तांत्रिकों की शरण में जाना गुरुदेव के अपमान का ही विषय है। इन लोगों के पास जाते ही हम अपने गुरुदेव के प्रति अनन्य निष्ठ नहीं रहते। गुरुदेव की अवज्ञा करने वालों पर जब क्लिष्ट प्रारब्ध का भुगतान आता है तब शरीर पर उसके कष्ट को देखकर उनके घरवाले परम् पूज्य गुरुदेव का भरोसा–विश्वास त्यागकर मोह ममता में जकड़े तुच्छ–अपवित्र शक्तियों के पास अपने मरीज को लिए–लिए फिरते हैं। तमाम पैसा बर्बाद होता है। उस पैसे को यदि सत्कार्यों में खर्च कर दें तो बहुत लाभ मरीज को हो जाये। जब कहीं भी लाभ नहीं होता तो हारकर पुनः अपने गुरुदेव की ही शरण में लौट कर आते हैं। गुरुदेव अपने बच्चे के प्राणों की अप्रत्यक्ष रूप में रक्षा हर समय करते रहते हैं, उसका तमाम कष्ट धीरे–धीरे कम करते रहते हैं। इन बातों को कोई नहीं जानता। संस्कारी कष्ट की दवा न किसी वैद्य–डाक्टर के पास होती है न किसी तांत्रिक के पास। श्री गुरुदेव जी के हाथ में सब कुछ होता है। आवश्यकता इस बात की है कि

हम अपने सत्कर्मों से किसी प्रकार उनका हृदय प्रसन्नता से भर दें। गुरुकृपा से ही प्रारब्ध कर्म का अतिशीघ्र भुगतान हो सकता है अन्यथा यह तमाम कष्ट देकर अपने समय पर ही समाप्त होता है। एक पैर अपने गुरु की शरण और दूसरा किसी अन्य की शरण में, यह अपने गुरु के प्रति मिथ्या समर्पण है। अपने गुरुदेव को धोखा देना है। इसे अनन्य भक्ति तो कहा ही नहीं जा सकता।

संसार के प्रति जब तक पूर्ण अनासक्ति पैदा नहीं हो जाती तब तक हृदय में प्रबल 'अनन्य भक्ति' पैदा नहीं होती। हम संसार के आकर्षण से पूर्णतः विरक्त हो जायें ऐसा प्रयास करें। मन-बुद्धि को दोनों में से किसी एक का चिन्तन करना है। संसार का अथवा परमात्मा का। ईश्वर में मन लगाने को वैराग्य की आवश्यकता होती है। संसार के प्रति वैराग्य होने के कारण जिनका मन संसार में बिल्कुल नहीं लगता तब बड़ी आसानी से उनके मन बुद्धि परमात्मा के चिन्तन में लग जाते हैं। उनमें शीघ्र भगवान की भक्ति प्रकट हो जाती है।

"अनन्य भक्ति" प्राप्ति की तीन स्थितियाँ

"अनन्य भक्ति" के तीन प्रकार हैं प्रत्येक प्रकार की अनन्य भक्ति को प्राप्त करने की अपनी पृथक स्थिति है। पहली व दूसरी स्थितियाँ अस्थाई हैं जबकि तीसरी स्थिति में 'अनन्य भक्ति' भक्त के हृदय में हर समय बनी रहती है। अनन्य भक्ति को ही इष्ट के प्रति 'अनन्य प्रेम' भी कहते हैं।

(१) किसी भय विशेष के कारण उत्पन्न क्षणिक कालीन 'अनन्य भक्ति'।

(२) कई वर्षों के घोर कष्ट को भोगने पर संसार के प्रति वैराग्य होने से उत्पन्न अल्पकालीन 'अनन्य भक्ति'।

(३) गुरु कृपा से प्राप्त हुई दीर्घकालीन 'अनन्य भक्ति'।

(१) अनन्य भक्ति की प्रथम स्थिति—किसी प्रबल भय के कारण यह स्थिति स्वतः थोड़ी देर के लिए बन जाती है। अर्थात् भक्त संसार से बिल्कुल अनासक्त होकर भगवान का 'अनन्य चिन्तन' करते हैं। अनन्त चिन्तनयुक्त आर्त पुकार को सुनकर भगवान अप्रत्यक्ष रूप से भक्त की सहायता करने आते हैं और थोड़ी ही देर में कृपा करके लौट जाते हैं। निम्न उदाहरण में यह स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

चीरहरण के समय लोक लज्जा के भय से द्रौपदी ने तुरन्त अनन्त भक्ति युक्त होकर योगेश्वर श्री कृष्ण को टेर लगाई। पाँचों पतियों को मुँह लटकाये देखकर उसका का भय और अधिक बढ़ गया। उसने भगवान को महायोगी कहकर पुकारा—

कृष्ण कृष्ण महायोगिन कृष्ण गोपीजन प्रियः।
कौरवार्णव निमग्नां मां किं न पश्यसि केशव।।

अर्थात्—द्रौपदी का भाव था कि एक साधारण योगी भी अपने दुःखी भक्तों को हर समय देखता रहता है। आप तो महायोगी हो। कौरवों की सभा में आप मुझे दुःखी क्यों नहीं देख रहे हैं ? (क्रमशः)

ॐ श्री रामलाल प्रभवे   ॐ   ॐ श्री सद्गुरु चरण कमलेभ्यो नमः

श्री सिद्ध गुफा योग साधक मण्डल कानपुर के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष में
योग योगेश्वर अनन्त महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज तथा
योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के चरण कमलों में सादर समर्पित

नवम् साधना शिविर

दिनांक ९ से १२ अक्टूबर, २००३

स्थान – कम्युनिटी सेन्टर टाइप टू आई० आई० टी० कानपुर

सभी सम्मानीय गुरु भाई बहन एवम् श्रद्धालु साधकों को सूचित किया जाता है कि उपरोक्त तिथियों में आयोजित साधना शिविर में सम्मिलित होकर शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक लाभ उठायें। इस अवसर पर यौगिक आसन, जीवन तत्व साधन, यौगिक षटकर्म, योग द्वारा असाध्य रोगों की चिकित्सा, मन्त्र जाप तथा यौगिक अनुष्ठानों के अतिरिक्त संकीर्तन आदि का कार्यक्रम सम्पादित होगा। दिनांक ९ से ११ अक्टूबर, २००३ तक अनुष्ठान का प्रावधान है जो हर हालत में करना अनिवार्य होगा, जिसमें दोपहर को भोजन और शाम को फलाहारी का प्रबन्ध होगा। भाईयों से प्रार्थना है कि इसके लिए पहले से ही मन बना कर आवें।

कार्य-क्रम

प्रातः
५.०० से ६.०० बजे तक सूक्ष्म आरती तथा ध्यान
६.०० से ७.३० बजे तक जीवन तत्व साधन एवम् षटकर्म
७.३० से ८.३० बजे तक आरती व गीता पाठ
८.३० से ९.०० बजे तक स्वल्पाहार
९.०० से १०.३० बजे तक संकीर्तन
१०.३० से १२.३० बजे तक प्रवचन

सायं
३.३० से ५.३० बजे महिला संकीर्तन
५.३० से ६.३० बजे भजन
६.३० से ७.०० बजे तक आरती
७.०० से ८.३० बजे तक प्रवचन

सम्पर्क हेतु दूरभाष – ०५१२-२५९८२६७, २५९२२००, २५९८८३५८ २५१२०८९ २५९७५४१

नोट– पूरा कार्य-क्रम सघन साधना पर आधारित होगा। भोजन व्यवस्था साधना के आधार पर ही की जाएगी। मौसम के हिसाब से बिस्तर साथ अवश्य लावें।

निवेदक– **श्री सिद्ध गुफा योग साधक मण्डल, कानपुर**

मुद्रक–सरस्वती प्रिन्टिंग प्रेस आई० आई० टी० गेट कानपुर

श्री गुरुदेवजी की अभिलाषा का साकार रूप

योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज योग विद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार से मान्यता प्राप्त)

अमराई धाम सीकन, जि० रायबरेली

हम सबके परम पूज्य सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की प्रबल अभिलाषा थी कि हम श्री सिद्धगुफा सवाई आश्रम में योग विद्या के अध्ययन के लिए एक योग विद्यालय बनाएं जिसमें लौकिक विद्या के साथ–साथ अष्टांग योग की शिक्षा मुख्य रूप से हो। छात्रों को यम–नियम की नैतिक शिक्षा के साथ योगासन–प्राणायाम व ध्यान योग की भी साधना कराई जाए। जिससे बच्चों में चरित्र उत्थान व योगी बनने की भावना जाग्रत की जा सके। श्री गुरुदेव जी चाहते थे कि योग सिद्धान्तों एवं यौगिक शिक्षा का अनुसरण करके बच्चों के द्वारा एक यौगिक समाज निर्माण किया जा सके।

योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज योग विद्यालय में श्री गुरुदेवजी की इसी प्रबल अभिलाषा को उन्ही की कृपा से क्रियान्वित करने का प्रयास किया जा रहा है।

नोट—श्री गुरुदेव जी के इस योग विद्यालय में लौकिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के साथ–साथ यौगिक शिक्षा, योगासन श्री गुरुदेव जी की आरती पूजा व ध्यान, कम्प्यूटर शिक्षा, खेलकूद। छात्राओं के लिए संगीत एवं सिलाई, कढ़ाई तथा अंग्रेजी– हिंदी माध्यम का सरल सुबोध भाषा द्वारा अध्यापन योग्य कुशल एवं कर्मठ योगाचार्यों के द्वारा शिक्षण प्रशिक्षण होता है।

अध्यक्ष—
ब्रह्मचारी ओमप्रकाश

प्रबन्धक—
मोहन लाल अग्रवाल

श्री सिद्धयोग शिक्षण संस्थान

एफ २४००, राजाजी पुरम, लखनऊ • फोन नं०–४१८०२०

अगस्त 2003

PRINTED MATTER BOOK-POST

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सचाई (एत्मादपुर) आगरा

श्री/सुश्री ____________________

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ४/९-१०)

छन्द, यज्ञ (हविर्यज्ञ), क्रतु (ज्योतिष्टोमादि), व्रत, भूत, भविष्यत् और जो कुछ वेद बतलाते हैं, इस सब को माया का स्वामी (मायी) इससे रचता है और उसमें दूसरा (पुरुष), माया से रुका (बँधा) है। प्रकृति को माया जानो और महेश्वर को मायी, सारा विश्व उस (मायी-मायाशबल) के अंगों से व्याप्त है।

मुद्रक एवं प्रकाशक [illegible] शर्मा द्वारा [illegible] आगरा के लिए [illegible] आगरा से मुद्रित [illegible] सचाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। सम्पादक- आचार्य [illegible] शर्मा